विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ नवम्बर—१९९७ अंक—११

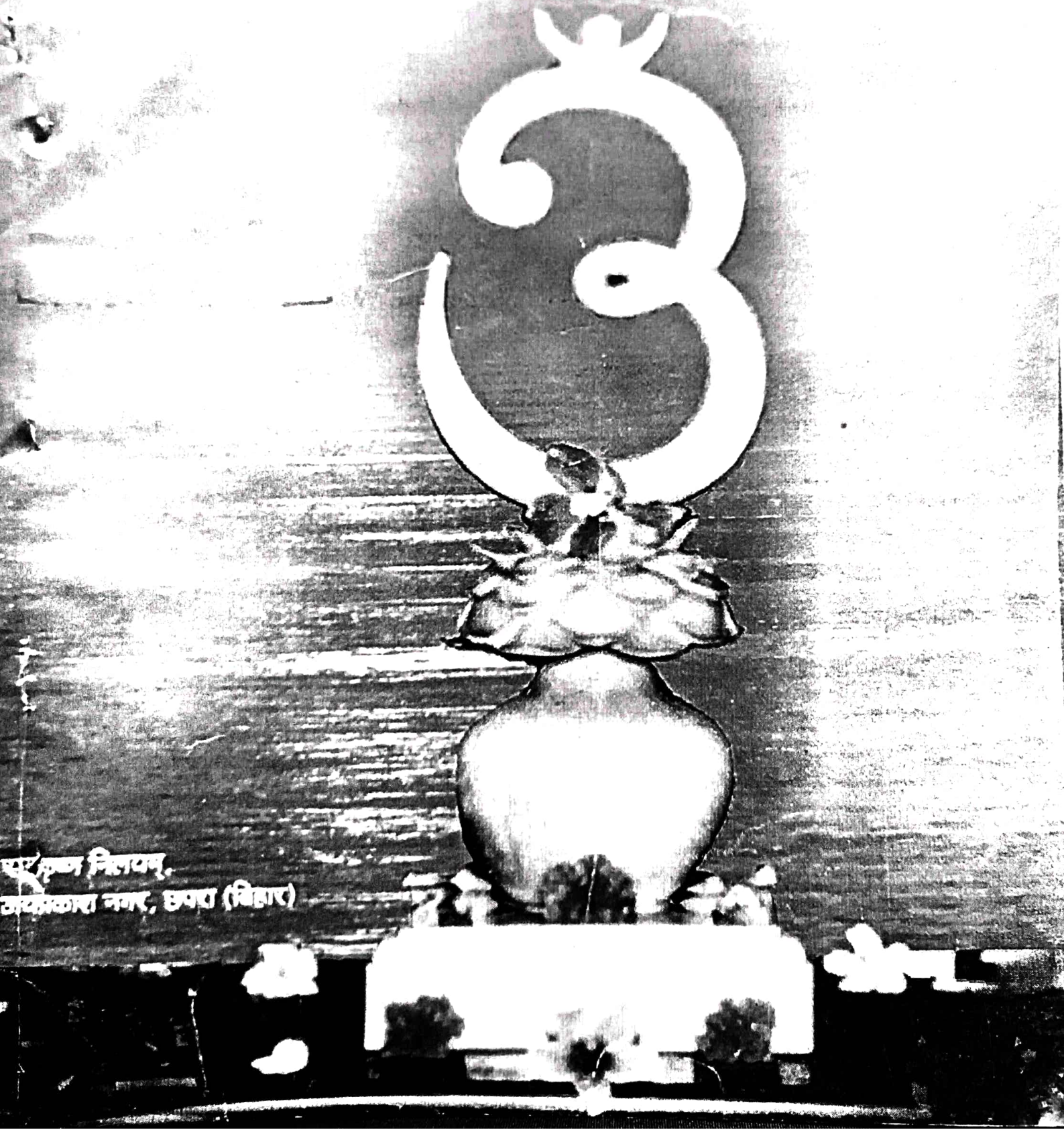

रामकृष्ण निलयम्,
अयोध्याकारा नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७, श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष वोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई वी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि०, मुम्बई
१८०. श्री एस० पी० त्रिवेदी—[illegible] (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची – (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंरी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है		१
२. चलो मन वेलुड़ मठ की ओर (भजन)	डॉ० केदारनाथ लाभ	२
३. श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें (२)	स्वामी निर्वाणानन्द	३
४ देव लोक	स्वामी अपूर्वानन्द	७
५. साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रवक्ता : संत कबीर	डॉ० अमरकांत कुअर	१०
६. राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में शिक्षकों का योगदान	विमला ठकार	१५
७. मानवीय मूल्यों के प्रतीक गुरु नानक देव	श्री बलवीर सिंह भसीन	१७
८. मनुष्य चाहिए पशु नहीं	श्री मोहन सिंह मनराल	२०
९. इस्लाम में चमत्कार और मेराज	युनूस अकेला	२३
१०. प्रश्न : उत्तर (१)	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	२७
११. स्वतंत्रता के पचास वर्ष और जनजीवन	कु० ऋचा रश्मि	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ नवम्बर—१९९७ अंक—११

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कँटीली झाड़ियों से भरे मैदान पर नंगे पैर नहीं चला जाता। उस पर से चलने के लिए या तो पूरे मैदान को चमड़े से ढक देना होगा या फिर अपने पैरों में चमड़े के जूते चढ़ाने होंगे। समूचे मैदान को चमड़े से मढ़ना असम्भव है, अतः पैरों में जूते पहनना ही उपयुक्त है। इसी तरह इस वासनापूर्ण संसार में असंख्य कामना-वासनाओं की पीड़ा से छुटकारा पाना हो तो या तो सभी वासनाओं की पूर्ति हो जानी चाहिए, या फिर सभी का त्याग हो जाना चाहिए। परन्तु वासनाओं की पूर्ति होना कभी सम्भव नहीं, क्योंकि एक वासना को पूरी करने जाओ तो दूसरी वासना आ खड़ी होती है। इसलिए ज्ञान-विचार और सन्तोष के द्वारा वासनाओं का त्याग करना ही उपर्युक्त है।

(२)

एकदम सब कुछ त्याग देना सम्भव नहीं होता। उसके लिए योग्य समय आना चाहिए। परन्तु यह भी सच है कि मनुष्य को उसके विषय में सुनते रहना चाहिए। सदा त्याग वैराग्य की बात सुनते रहने से सांसारिक विषयों की वासना धीरे-धीरे कम हो जाती है। शराब का नशा दूर करने के लिए चावल का धोवन थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाहिए। इससे धीरे-धीरे स्वाभाविक अवस्था लौट आती है।

(३)

पण्डित और साधु पुरुष में एक बड़ा अन्तर है। कोरे पण्डित का मन कामिनी और कांचन पर ही लगा रहता है, किन्तु साधु का मन हरि के चरण कमलों में लगा रहता है।

भजन

चलो मन बेलुड़ मठ की ओर

—डॉ० केदारनाथ लाभ

चलो मन बेलुड़ मठ की ओर !
बेलुड़ मठ विश्राम-धाम है, शोभा-सिन्धु अछोर !
रामकृष्ण प्रभु जहाँ विचरते
पाप-ताप जन जन के हरते
भरते भक्तों के अन्तर में परमानन्द अथोर !
मंगल - आरति शान्ति - दायिनी,
संध्या - आरति सुख - प्रदायिनी,
भक्ति ज्ञान जप ध्यान मनुज को करते आत्म-विभोर !
गंगा तीर नीर चिर पावन
लता पुष्प तरु मृण मन - भावन
विहगों के स्वर - सामवेद सुन स्वर्ण लुटाती भोर !
साधु - सन्त पद - चुम्बित कण-कण
बेलुड़ मठ आनन्द - निकेतन
दर्शन से कटता भव-बन्धन, मिटता हिय-तम घोर !
बसती जहाँ सारदा माता
स्वामीजी नव जीवन दाता
स्वामी ब्रह्मानन्द उठाते ब्रह्मानन्द - हिलोर !
कर ले निज नयनों को पावन
हो जा धन्य अरे मेरे मन
रामकृष्ण मुख-चन्द्र निरख नित मेरे चित्त-चकोर !
चलो मन बेलुड़ मठ की ओर !

श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों की बातें (२)

— स्वामी निर्वाणानन्द

अनुवादक—स्वामी चिरन्तानन्द
रामकृशन मिशन, नरोत्तम नगर

महाराज उस समय भुवनेश्वर मठ में थे। एक दिन मठ के बरामदे की सीढ़ी के पास खड़े होकर एक सज्जन से बातचीत कर रहे हैं, तभी अचानक ऊपर से रंग का ढेला महाराज के पैर के पास आ गिरा। किसने फेंका? छत के ऊपर, आश्रम के चारों ओर खोजा गया—कहीं कोई नहीं। वह सज्जन भी अवाक् हैं और हम सब भी अवाक् हैं। कहाँ से रंग आया? किसने रंग दिया? महाराज ने पूछा—"आज क्या दोल पूर्णिमा (होली) है?" पंचांग देखा गया। सचमुच ही उस दिन होली का त्योहार था। भुवनेश्वर उस समय जंगल था। मठ के चारों तरफ जंगल ही जंगल था, मनुष्य का नाम भी नहीं था। मठ में विशेष कोई आते भी नहीं। हम लोग भी कब, क्या तिथि है, यह सब खबर नहीं रखते थे। परन्तु भगवान अपनी अघटन-घटन-पटीयसी माया के द्वारा अपने अंश-जात व्रज के राखाल को होली के दिन को जना देते हैं। उन्होंने रंग-गुलाल खरीदकर ठाकुर को निवेदित कर सबको रंग खेलने के लिए कहा। उनके निर्देशानुसार लिंगराज मंदिर के पास एक दुकान से मैं गुलाल खरीद लाया। ठाकुर को निवेदित कर शेष सब महाराज के पैरों में डाल दिया। उन्होंने कहा—"यह क्या रंग खेलना हुआ?" कहकर स्वयं ही कुछ गुलाल लेकर हम लोगों के मुँह में, सिर में लगा दिये। उस दिन महाराज को उत्फुल्ल एवं आनंदमय देखा था। उनके निर्देशानुसार मंदिर में नंददुलाल श्रीकृष्ण का भजन गाया। बेलुड़ मठ में रहने से महाराज होली के दिन महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानंद) को, गंगाधर महाराज (स्वामी अखंडानन्द) के उपस्थित रहने पर उनको भी गुलाल एवं रंग लगाते थे। महापुरुष महाराज भी छोटे बच्चे के समान आनन्दित होकर बोलते, "वाह! वाह! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, चमत्कार, चमत्कार।"

मठ में आज ऐश्वर्य की प्रचुरता है। हमलोग जब मठ में आए उस समय क्या ही दारिद्रय के बीच दिन काटा है! किन्तु हम लोग कभी भी इन सबका सोच विचार नहीं करते थे। खाना-पीना, रहने की सुविधा-असुविधा उस समय गौण बात थी। मुख्य बात थी महाराज एवं ठाकुर के साक्षात् शिष्यों का सान्निध्य लाभ, ठाकुर की सेवा। ठाकुर के शिष्यों के सान्निध्य में रहने-खाने का कष्ट, कष्ट ही नहीं लगता था। मन महानन्द में मग्न रहता। महापुरुषों के सान्निध्य का ऐसा ही प्रभाव होता है! इस समय सबेरे कलई किए हुए गिलास में एक गिलास काली चाय, साथ में एक छोटे डब्बे में एक डब्बा मुरमुरा (मुरही) एवं कभी-कभी दो प्रसादी बताशा मिल जाता। परन्तु आखिर में जो आते उनके भाग्य में यह मुरही भी नहीं होती थी। दोपहर में मिलता भात, पानी जैसी पतली दाल एवं सब्जी बगान के शाकपत्तों से बनती एक प्रकार की चच्चड़ी। किसी किसी दिन खट्टा आमड़ा (एक खट्टा फल) की चटनी मिलती। रात में मिलती थी रोटी-दाल एवं कुम्हड़े की

सब्जी। सबके भीतर उस समय दरिद्रता की छाप थी। मठ के काम-काज की देखरेख करते थे बाबूराम महाराज। उस समय संभवतः महापुरुष महाराज काशी में थे। बंगला देश के होमियोपैथी के जानमाने महेश भट्टाचार्य महाशय तब मठ में अतिथि होकर रह रहे थे। उस समय वे स्त्री वियोग एवं अनेक प्रतिकूलताओं का सामना कर चुके थे, एवं शान्ति की आशा में मठवास एवं साधुसंग कर रहे थे। प्रतिदिन राजा महाराज के दर्शन, प्रणाम, जपध्यान करते। बाबूराम महाराज के स्नेह प्यार से मुग्ध होकर उन्होंने अपनी सम्पत्ति, रुपया-पैसा सब कुछ ठाकुर के काम के लिए दान कर देना चाहा। महेश बाबू की इस इच्छा की बात बाबूराम महाराज ने राजा महाराज को बताई। राजा-महाराज सब सुनकर गंभीर हो गये। बाद में धीरे-धीरे कहने लगे, "बाबूराम भाई, गृहस्थ व्यक्ति साधु-संग एवं मठवास करके मन में वैराग्य लाकर अपनी कष्ट से उपार्जित सम्पत्ति त्याग करना चाहता है, और हम लोग—संन्यासी, अपरिग्रह हमारा आदर्श है—गृहस्थ के ऐश्वर्य से मोहित होकर अपने आदर्श को भूलना चाहते हैं! आप ही ठीक कीजिए न बाबूराम भैया, क्या श्रेय है?" बाबूराम महाराज ससंकोच बोल उठे, "ओ हो समझा—जैसा है—वैसा ही रहेगा, जिससे महेश बाबू का वैराग्य और भी बढ़ेगा, संसार में ईश्वर ही एकमात्र सत्य और बाकी सब अनित्य—यह ज्ञान होगा। हम लोगों की तितिक्षा में भी वृद्धि होगी।"

प्रत्येक क्षेत्र में महाराज का सिद्धान्त था हिमालय के समान दृढ़, गंभीर, धीर-स्थिर एवं निश्चित तथा आध्यात्मिक भाव से पूर्ण। अवश्य उनका यह स्वभाव जन्मजात था, फिर भी श्री श्री ठाकुर उन्हें और भी बलशाली किये थे, स्वामी जी ने और भी आत्मविश्वासी होना सिखाया था। गुरु भाइयों के बीच जब भी किसी आदर्श से संबंधित अस्पष्टता का आभास पाते तब वे इसी प्रकार की बातें करते।

मठ में उस समय निवेदिता के कार्यकलाप को लेकर अनेक दुश्चिन्ताओं की सृष्टि हुई थी। स्वामी जी का देहान्त हो गया है। निवेदिता अनेक सक्रिय एवं विख्यात क्रांतिकारियों के साथ संबंध रख रही है, विभिन्न प्रकार से उन लोगों की सहायता कर रही है। बाद में अनेक सक्रिय क्रान्तिकारियों ने अपने पूर्व जीवन त्यागकर स्वामी जी के आदर्शानुसार श्रीरामकृष्ण को अपने जीवन का ध्रुव-तारा जानकर संघ में योगदान किया था। जो भी हो, निवेदिता के कार्यों के कारण मठ के ऊपर ब्रिटिश सरकार की बाज-दृष्टि पड़ रही है, मठ बंद कर दिया जाएगा—इस प्रकार की आशंका है। शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) को बाद में लिखित प्रतिज्ञा पत्र देना पड़ा कि यहाँ से किसी प्रकार का राजविद्रोही कार्य नहीं होता। यह अध्यात्म चिन्तन का स्थान है, यहाँ से दुःख-पीड़ित मनुष्यों की सेवा होती है, इत्यादि। स्वामी जी एक तरफ जैसे क्रांतिकारियों को अग्निमंत्र में दीक्षित होकर देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए कहते हैं, 'अभीः' मंत्र से जागने के लिए आह्वान करते हैं तो दूसरी तरफ अपने गुरु भाइयों को बारम्बार सतर्कवाणी सुना रहे हैं, तुम लोगों के जीवन का मंत्र है 'बहुजन सुखाय बहुजन हिताय'। तुम सब सहनशीलता, धैर्य-स्थैर्य, क्षमा एवं उदारता की पराकाष्ठा से 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'—इस महामंत्र के द्वारा जीव के भीतर शिव की खोजमें शरीरपात करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होओगे। —यही उनकी वाणी है, यही उनका निर्देश है। इधर संन्यासी संघ में रहकर भी निवेदिता स्वामी जी की ही प्रेरणा से भारत माता का बंधन-मोचन करने के लिए स्वयं की बलि देने के लिए तत्पर है। सब

सुनकर राजा महाराज ने उन्हें मठ में बुलाया। स्वामी जी के कमरे से लगा हुआ गंगा की तरफ वाले खुले बरामदे में राजा महाराज गंभीर मुद्रा में आराम कुर्सी पर बैठे हुये हैं। निवेदिता उन्हें प्रणाम कर फर्श पर बैठती है। महाराज की ओर उनकी प्रश्न सूचक दृष्टि है। मधुरकंठ से महाराज ने कहा, "मार्गरेट, तुम संन्यास के आदर्श से प्रतिष्ठित संन्यासी संघ की एक सदस्या हो। स्वयं को राजनीति एवं सक्रिय क्रांति में अत्यधिक युक्त कर दे रही हो न क्या ? निवेदिता की आँखें राजा महाराज के पाँव की ओर है। शान्त, धीर कंठ से निवेदिता ने उत्तर दिया, "स्वामी जी ने मुझे भारत माता की सेवा के लिए इसी प्रकार ही तो उत्सर्ग किया है महाराज !" राजा महाराज ने उससे भी अधिक शान्त एवं दृढ़ कंठ से कहा, "मार्गरेट, स्वामी जी ने हम लोगों को बारम्बार सतर्क किया है। बहुत बार, बहुत से पत्रों में निर्देश दिया है, मठ के सदस्यगण राजनीति अथवा किसी प्रकार की क्रांति के साथ स्वयं को युक्त न करें। उनका कार्य सभी जीवों के भीतर शिव की उपस्थिति जानकर आमरण सेवा करना है।" दोनों ही बहुत देर तक चुप रहे। निवेदिता का विनम्र मुखमंडल एवं आँखें डबडबाई हुई हैं। शान्त भाव से वे राजा महाराज को प्रणाम कर उठ गईं और दूसरे दिन उन्होंने अखबार में अपना स्पष्टीकरण दिया कि, "रामकृष्ण मिशन के साथ मेरा किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं है। मेरे किसी भी कार्य के लिए मिशन उत्तरदायी नहीं होगा।" इस प्रकार व्यावहारिक सम्पर्क छिन्न होने से भी अंतिम दिन तक राजा महाराज, शरत् महाराज एवं अन्य प्राचीन संन्यासियों के साथ हर समय उनका हार्दिक संबंध था, मठ में नियमित आना जाना था। मठ-मिशन निवेदिता का प्राण था। ठाकुर के शिष्यगण थे उनके परम श्रद्धेय। उन लोगों के लिए भी वे थीं परम स्नेहमयी पात्री। वे थीं श्री श्री माँ के स्नेह की 'खुकि' (छोटी बिटिया)। महाराज एवं शरत् महाराज ने स्वामी जी के 'कम्पलीट वर्क्स' की 'भूमिका' निवेदिता से लिखवाई थी। कितना स्नेह एवं आस्था रहे तब कहीं यह संभव होता है, यह समझना होगा।

एक दिन संध्या होने को है तभी महाराज ने कहा, "सुज्जि, संध्या आरती में कितनी देर है ?" मैंने कहा, "बीस मिनट बाकी है।" महाराज ने कहा, "मुझे बहुत भूख लगी है, कुछ गरम-गरम लूची खिला सकते हो ?" असंभव इच्छा जानकर भी 'अच्छा महाराज' कहकर नीचे दौड़कर गया। रसोई घर के पास एक अँगीठी में आँच दी हुई था। भंडारी से कहकर उसे ले आया। उस समय मठ भवन की सीढ़ी के नीचे जहाँ अभी टेलिफोन रखा हुआ है, इस जगह पर राजा महाराज के खाना बनाने के लिए कुछ छुट-फुट सामान रखे रहते। दो-तीन मिनट में ही कड़ाही में थोड़ा-सा जल देकर सिगड़ी के ऊपर रखकर एक बड़ा-सा आलू पतला-पतला काटकर उबलने के लिए रखा एवं एक मुट्ठी मैदा में घी लगाकर जल देकर चार लोंदा बनाया। एक स्टोव जलाकर कड़ाही में घी दिया। मैदा के चार लोंदे को हाथ से बैठाकर गरम घी से चार पूड़ियाँ (लूचियाँ) बना लीं। इसी बीच बचे हुए गरम घी से फोड़ न देकर उबाले हुए आलू को सेंककर एक प्लेट में चीनी, अचार एवं चार लूचि, एक गिलास पानी तथा आलू भाजा लेकर जब सीढ़ी से ऊपर जाने लगा तो दीवार घड़ी में देखा आरती होने में अभी भी कुछ मिनट बाकी है। टेबल के ऊपर सब चीज सजाकर खाने के लिए देने से महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। मुझे कसके पकड़कर कहा, "सुज्जि बेटा, तू ने आज आदर्श गुरु सेवा दिखाई। यदि इस गुरु सेवा एवं निष्ठा के लिए किसी को ब्रह्म ज्ञान हो तो मैं कहता हूँ तुम्हारा सबसे पहले होगा।"

उनकी कृपा से जीवन तो मैंने काट दिया, अब निश्चित होकर बैठा हूँ। कब वे कृपा करेंगे यह भावना मेरी नहीं, उनकी है। मैं तो जानता हूँ—मेरा स्वयं का कुछ भी नहीं है। सभी उनका है, सभी उन लोगों का है। जय ठाकुर, जय माँ, जय स्वामी जी, जय महाराज !

डा० ज्ञानेन्द्रनाथ कांजीलाल मठ एवं मिशन के परम भक्त थे। जब भी उनको बुलाया जाता तुरन्त ही वे साधुओं को देखने जाते। श्री श्री माँ का ईलाज भी उन्होंने किया था। इस समय मठ के जिन कुछ भक्तों के पास गाड़ी थी उनमें डाक्टर कांजीलाल अन्यतम थे। अपनी गाड़ी में महाराज को बहुत बार उन्होंने घुमाया भी था। डाक्टर कांजीलाल साधुओं की सेवा करते करते, साधुओं का स्नेह-प्यार पाते पाते संन्यास जीवन के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। उनके मन की यह इच्छा जब प्रबल हुई तो एक दिन वे महाराज से बलपूर्वक पूछ बैठते हैं कि संसार में रहकर भी सन्यास लिया जाता है या नहीं ? महाराज ने उनके प्रश्न सुनकर मृदु मुस्कान में कहा, "हाँ लिया जाता है, उसे कौल संन्यास कहते हैं, यह तांत्रिक मत है। आश्रम एवं संसार दोनों जगहों पर रहा जा सकता है किन्तु बात क्या है जानते हो ? मान-यश, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि नहीं छोड़ने से संन्यास लेना ठीक नहीं है। जनक राजा क्या सब कोई हो सकते हैं ?" डाक्टर बाबू के उस दिन कुछ न बोलने से भी बाद में महाराज से हठपूर्वक कहते है, "मुझे कौल-संन्यास दीजिए।" महाराज हँसकर, मजाक करते हुए बात उड़ा देते हैं। किन्तु डाक्टर छोड़ेंगे नहीं। बाद में एक दिन उनके अत्यन्त आग्रह के कारण महाराज ने विश्वरंजन महाराज (स्वामी हरिहरानन्द) को सब अनुष्ठानादि करने के लिए कहा—मठ के ही गंगा तीर में। अभी जहाँ पर स्वामी जी का मंदिर है उसके पीछे गंगा के ढलान पर दो तीन पेड़ कनेर फूल के थे। वहीं पर गोबर से लीप कर सब आयोजन करके तांत्रिक मत से अनुष्ठानादि रात्रि ९ बजे के बाद शुरू हुआ। डाक्टर कांजीलाल भी स्नानादि समाप्त कर एक आसन के ऊपर बैठे। आधी रात में पूजादि अनुष्ठान प्रायः समाप्त हो गये हैं। 'शिवाबलि' दी गई है। पुजारी ध्यान कर रहे हैं, उसी समय डाक्टर बाबू की दर्द भरी पुकार सुनकर विश्वरंजन महाराज ध्यान से देखते हैं—रामछागल (बड़े बकरे) के समान विशाल चेहरे वाले दो सियार 'शिवाबलि' को पीछे के पैरों से घसीटकर गंगा में फेंककर चले गये। इस घटना से संन्यास अनुष्ठान परित्यक्त हुआ। राजा महाराज ने जब सब सुना तो मृदु हास्य से बोले, "डाक्टर, मैं जानता था, नहीं होगा। फिर भी तुम्हें स्वयं को दृष्टि से देखने की जरूरत थी। देखो डाक्टर, 'मन से त्याग ही त्याग है। कलिकाल की तपस्या है सत्य बात कहना'—यह सब तो ठाकुर कह गये हैं। तुम बाह्य चिह्न के लिए इतने कातर क्यों हो, तुम्हारे स्टेथोस्कोप को यदि मैं गला में झुलाकर घूमूँ, मुझे क्या शोभा देगा ?" महाराज जब तक इस लोक में थे तब तक डाक्टर कांजीलाल ने और कभी भी संन्यास लेने की बात नहीं कही। किन्तु उनके देहावसान के बाद 'उद्बोधन' में जाकर शरत् महाराज को पकड़े। शरत् महाराज ने भी उन्हें निरस्त किया परन्तु उनके बारंबार अनुनय करने से शरत् महाराज ने एक साधु से कहकर दक्षिणेश्वर की पंचवटी के पास संन्यास का आयोजन करवाया था। उसमें भी बहुत-सी विघ्न-बाधाओं की सृष्टि हुई थी। अवश्य अन्त में डा० ने कौल संन्यास ग्रहण किया था। किन्तु हम सब जानते हैं कि उनके जीवन के अंतिम दिनों में अनेक विघ्न एवं दुःखपूर्ण घटनाएँ घटी थीं। इसीलिए राजा महाराज जबरदस्ती कुछ भी

करने के लिए मना करते थे। जबरदस्ती सामर्थ्य से बाहर ध्यान-जप करने के लिए मना करते थे। एक-दो घटनाओं से जाना जाता है कि जिसने भी महाराज के निषेध के बावजूद ध्यानादि प्राणायामादि किए थे, उनका मस्तिष्क खराब हुआ है। मात्र महाराज ही नहीं, ठाकुर के अन्यान्य शिष्यगणों के निषेध के बावजूद जिसने वह सब किया, उन लोगों की भी यही परिणति हुई है।

ठाकुर के शिष्यों को देखा है, वे अत्यन्त Simple (साधारण) भाव से रहते। हम लोगों के साथ इस प्रकार मिलते-जुलते थे कि हमलोगों को उनके प्रेसिडेंट, सेक्रेटरी होने का भान ही नहीं रहता था, अवश्य वे लोग यह सब समझने के लिए हम लोगों को अवसर भी नहीं देते थे। शरत् महाराज, सक्रेटरी—वहीं पास में ही बैठे हुए हैं, और हम सब सोकर लोटपोट कर रहे हैं। कुछ संकोच करना नहीं होता था। वे सब हमलोगों को अत्यन्त स्नेह की दृष्टि से देखते एवं बहुत ही Sympathetic (हमदर्द) थे।

(क्रमशः)

देव लोक

—स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवाद—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण मिशन, लिम्बडी

बेलुड़ मठ में वापस आना

बेलुड़ मठ में अनेक महत्वपूर्ण कार्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे--इसीलिए लम्बे (११ महीने) के बाद महापुरुषजी १९२५ की १९ फरवरी को बेलुड़ मठ वापस आ गये। इन्हीं कुछ महीनों में वे जिस-जिस स्थान में थे उन सब स्थानों में ठाकुर का भाव व्यापक रूप से प्रचारित हुआ था। उनमें तीन चार विशिष्ठ स्थानों में स्थायी आश्रम बन गये तथा अनेक स्थानों में भावी आश्रमों का सूत्रपात हुआ था। इसके अतिरिक्त उनके स्पर्श में आने से एक ऐसी आदर्श भक्त-मंडली तैयार हो गयी थी, जो स्थानीय आश्रमों के कार्य प्रसार में आत्मनियोग करके क्रमशः व्यापक रूप से पूरे मठ मिशन को सहायता करने लगे थे।

बेलूड़ मठ के विषय में श्री श्री और स्वामीजी

बेलुड़ मठ उनका सबसे प्रिय स्थान। १९१९ ई० में स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज आदि के द्वारा अनुरोधित होकर वे बेलुड़मठ में स्वामी प्रेमानन्द के सहायक के रूप में स्थाई भाव से रहने लगे एवं १९३४ ई० के फरवरी महीने में पुण्यभूमि बेलुड़ मठ के द्विमंजिले घर में जनका देह-त्याग हुआ। इस सुदीर्घ १६-१८ वर्ष में उन्होंने श्री रामकृष्णदेव के एकनिष्ठ सेवक के रूप में बेलुड़ मठ में निवास किया था। इसी समय के बीच ठाकुर के कार्य के लिए उनको तीन-चार बार भारत के विभिन्न प्रान्तों में जाना पड़ा था। एक दिन वे प्रसंग क्रम में बोले थे : 'कहीं भी क्यों न रहूँ, मन बेलुड़ मठ में ही पड़ा रहता है। बेलुड़ मठ में ठाकुर का

विशेष प्रकाश। समस्त विश्व में ठाकुर के उदार भाव के प्रचार का महान केन्द्र रूप से स्वामी जी ने इस बेलुड़ मठ की स्थापना करके ठाकुर को प्रतिष्ठित किया था। श्री श्रीमाँ ने स्वयं पूजा करके ठाकुर को यहाँ बैठाया था। योगीन माँ आदि स्त्री भक्तों को श्री श्रीमाँ ने एक बार कहा था कि, जब वे घुसुड़ी में तपस्या करती थीं तब एक दिन नौका से दक्षिणेश्वर जाते समय गंगा के बीच उन्होंने देखा कि, ठाकुर गंगा के किनारे इस जगह में टहल रहे थे। यहाँ कुछ केले के पेड़ थे—उसी केले के बगीचे में ठाकुर नंगे शरीर घूम रहे थे। यह देख कर श्री श्रीमाँ ने सोचा—"अच्छा तो, ठाकुर यहाँ क्यों घूम रहे हैं?" तब तो मठ हुआ नहीं था और यहाँ मठ होने की कोई बात भी नहीं उठी थी। मठ तो स्वामी जी ने पाश्चात्य देशों से वापस आकर किया। मठ के लिए यह जगह ली गयी है सुनकर श्री श्रीमाँ ने खूब खुश होकर कहा था, "ठाकुर ने आगे से ही इस स्थान को पसन्द किया था। गंगा का पश्चिम किनारा, वाराणसी के बराबर। यहाँ पर मठ करके नरेन ने खूब अच्छा काम किया।" स्वामीजी ने इस मठ में ठाकुर की प्रतिष्ठा करने के पूर्व श्री श्रीमाँ को मठ देखने के लिए प्रार्थना की।

श्री श्रीमाँ भी प्रसन्न होकर मठ देखने गयीं एवं स्वयं ठाकुर को बैठा कर पूजा की। देखो, क्या आश्चर्य! ठाकुर तो स्थूल शरीर में यहाँ आये नहीं, किन्तु श्री श्रीमाँ ने स्थूल शरीर में आकर इस स्थान को पवित्र किया है। इस मठ में ठाकुर-प्रतिष्ठा के दिन स्वामी जी के आदेश से मैंने यहाँ एक मनदूध का पायस (खीर) बनाया था। ठाकुर को इस खीर का भोग दिया गया था। ठाकुर को इस मठ में प्रतिष्ठित करके स्वामी जी ने निश्चिन्तता की सांस लेकर कहा था, "आज मेरे सिर से एक बहुत बड़ा बोझा उतर गया। पिछले बारह वर्षों से मेरे मन में एक ही चिन्ता—किस प्रकार ठाकुर के लिए एक स्थान करके उनको प्रतिष्ठित करूँ। उनकी इच्छा से ही यह सम्भव हुआ—उन्होंने स्वयं ही सब योगायोग कर दिया है। इस मठ से समग्र विश्व में ठाकुर का उदार भाव प्रचारित होगा—यही होगा उनके सर्वधर्म समन्वय का प्रधान केन्द्र, यहाँ सभी मतों के सभी भावों का सामञ्जस्य होगा।" बाद में सब को सम्बोधन करके उन्होंने कहा था, "आप सभी इस मठ को केन्द्र करके उनके भाव प्रचार में सहायक बनिए, जगत् धन्य हो जाएगा, आप सभी धन्य हो जाएँगे। सारा संसार ठाकुर का उदार भाव ग्रहण करने के लिए व्याकुल है। मैंने खेत तैयार किया है—आप सभी उसमें बीज बोने में सहायता प्रदान करिए।" इस मठ के होने के बाद भी अवश्य ही मैंने अनेक बार हिमालय में तपस्या की है, परन्तु कहीं भी क्यों न रहूँ मन बेलुड़ मठ में पड़ा रहता है।'

महापुरुष जी स्वामी जी के निर्देश को स्मरण करके बेलुड़ मठ के सर्वांगीण कल्याण में आत्म नियोग किया था। वे कहते: 'बेलुड़ मठ ठीक चलने से, और सब आश्रम ठीक चलेंगे। बेलुड़ मठ समग्र संघ का सिर है।

ईश्वर लाभ ही मानव जीवन का उद्देश्य

आश्रमाध्यक्ष के द्वारा अनुरोधित होकर १९२५ ई० में जगद्धात्री-पूजा के उपलक्ष्य में महापुरुष महाराज भवानीपुर में गदाधर आश्रम में आये हैं। पूजा का सुन्दर आयोजन हुआ है। साधु और भक्तगण सभी उनके आगमनसे आनन्दित हैं। बहुत-सी बातें ही रही हैं। उन्होंने एक युवक भक्त से बातचीत के दौरान कहा: 'हम लोग हैं India, हम लोगों का आदर्श है Plain living and high thinking—मोटा भात और कपड़ा मिलने से ही हुआ। हम लोग मोटर गाड़ी नहीं ही चढ़े, उससे क्या आता जाता है। किन्तु हमलोगों के जीवन का

आदर्श है "ईश्वर लाभ"। ठाकुर ने भारत में जन्मग्रहण करके भारत को जगत पूज्य बना दिया है। भारत की महिमा संसार समय आने पर समझेगा। ठाकुर ने समग्र मानव जाति को लक्ष्य करके कहा है, "ईश्वर लाभ ही मानव-जीवन का उद्देश्य है।" इसके पूर्व किसी अवतार या आचार्य-पुरुष ने ईश्वर लाभ ही मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य है, यह बात इतनी जोर देकर कही नहीं थी। ठाकुर ने केवल कहा है, यही नहीं, उन्होंने अपने जीवन में आचरण करके दिखा दिया कि "ईश्वर लाभ" ही मानव जीवन का उद्देश्य है। जागतिक विषय या वस्तु का उनके पास जरा भी मूल्य नहीं था। संसार का महाभाग्य है कि उसने ठाकुर को पाया है। जगत् का अशेष कल्याण होगा, सर्वांगीण उन्नति होगी। ठाकुर के आविर्भाव के दिन से जगत् में सत्ययुग का आरम्भ हुआ है।" ठाकुर ने अपने जीवन और साधना द्वारा दिखला दिया कि सभी परमपिता की सन्ता हैं। ईसाई जिनको परमपिता कहते हैं, ठाकुर उन्हीं को जगन्माता कहते हैं। उनको ही वे "माँ", "माँ" कहते। इस बार ठाकुर ने आकर उसी परमा प्रकृति, आधाशक्ति को जगाया था। यह जो ठाकुर दक्षिणेश्वर काली मन्दिर में जाकर माँ को चँवर डोलाते हुए गाते—"जागो माँ कुंडिलिनी, तुमि नित्यानन्द स्वरूपिणी, ब्रह्माण्ड प्रसविनी" इत्यादि क्या अपनी व्यक्तिगत कुलकुण्डिनी जगाने के लिए, ऐसा नहीं, उनकी कुल कुण्डलिनी तो जाग्रत ही थी। स्वामी जी ने कहा था, "ठाकुर ने आकर ब्रह्मकुण्डिलिनी को जाग्रत किया था। उसके, फलस्वरूप, समग्र विश्व में सात्विक भाव का जागरण होगा। तीनों लोकों का उपकार होगा। सभी धर्मों में नवजागरण आएगा।"

'वही सच्चा मनुष्य है जो दूसरे के लिए कार्य करे'

इस समय आश्रमाध्यक्ष स्वामी कमलेश्वरानन्द महापुरुषजी को प्रणाम करके पास में एक ओर बैठे हुए स्वयंसेवकों को दिखा कर बोले! 'ये सब लड़के मुझको कार्य में खूब सहायता करते हैं। आप इन लोगों को आशीर्वाद दीजिए। महापुरुषजी प्रसन्न दृष्टि से पास में बैठे हुए लड़कों की ओर देख कर बोले: 'वाह! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।' ठाकुर के कार्य में तुम को सहायता करते हैं यह तो बहुत अच्छी बात है। मैं ठाकुर के पास इन लोगों के कल्याण के लिए प्रार्थना करता हूँ। देखो, संसार में सभी अपने लिए करते हैं और परिवार का पालन करते हैं, परन्तु वही सच्चा मनुष्य है, जो दूसरे के लिए कार्य करता है। मनुष्य का कर्तव्य दूसरे की सहायता करना है, नहीं तो देखो, पशु-पक्षी भी खाते हैं एवं बच्चों को खिलाते है, किन्तु मनुष्य भी यदि केवल स्वयं के पेट भरने के लिए—प्रयत्न करता है तो पशु-पक्षी से उसमें अन्तर क्या रहा? प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है दूसरे की सहायता करना। इसीलिए तो स्वामी जी सेवाधर्म का प्रचार कर गये हैं।"जीवे प्रेम करे जेई जन, सेई जन सेविछे ईश्वर।"

जीवमात्र को शिवज्ञान से सेवा करना—यही श्रेष्ठ साधना है। देवसेवा और श्रेष्ठ साधना है। वह हमको शीघ्र भगवान की ओर ले जाती है।' संतुष्ट मन से उनको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लेकर भक्तगण चले गये।

बेलजियम के भूतपूर्व राजा का बेलुड़ मठ परिदर्शन

इस वर्ष बेलजियम के भूतपूर्व राजा अलबर्ट ने भारत प्रवास के दौरान बेलुड़ मठ का दर्शन

किया। उन लोगों के मठ आने पर महापुरुष जी ने उन लोगों का सादर अभिनन्दन करके सप्रेम व्यवहार और आदर-सत्कार करके परितृप्त किया। महापुरुष जी के मधुर व्यक्तित्व से विशेषभाव से आकृष्ट होकर एवं उनके साथ बातचीत करने के बाद राजा अलवर्ट ने कहा था : 'भारत में एक ही ऐसा स्थान देखा, जहाँ मनुष्य मनुष्य के साथ बात करता है।

साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रवक्ता : संत कबीर

डॉ० अमरकांत

निरन्तर विज्ञान के बढ़ते चरण के कारण आज जबकि सम्पूर्ण विश्व की दूरी एवं सीमाएँ सिकुड़ गयी हैं और सम्पूर्ण भू-मंडल आसानी से लंघ्य हो गया है—मानव से मानव की, धर्म से धर्म की और साम्प्रदाय से साम्प्रदाय की दूरी बढ़ गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मों की सहिष्णुता और सद्भावना परक अवधारणाएँ अकाल के पोखर के जल की तरह सूखने लगी हैं। सभी धर्मों एवं साम्प्रदायों में निहित वह शक्ति जो मानव से मानव को बाँध कर रखती है, लुप्त होने लगी है। 'प्रेम', 'अहिंसा', 'सेवा', एवं 'सद्भावना' सभी धर्मों के व्यावहारिक पक्ष में 'शशक-सींग' प्रमाणित होने लगी है। अपने-आपको विवेकशील और बुद्धिमान प्रमाणित करने वाले समस्त मानव-समाज धर्म को हथियार बनाकर भांजने लगे हैं। सबके सब अपने-अपने धर्म का 'गाण्डीव' उठाकर, अपनी ही 'धर्म-भूमि' की सरसता को विषैले एवं क्षुद्र स्वार्थ-रूपी वाणों के तीक्ष्ण प्रहारों से सोखने के लिए तत्पर होकर आमने-सामने हैं। शायद, सभी ने अपना विवेक खो दिया है। समूचा मानव-समाज त्राहि-त्राहि कर उठा है। लोगों को आशंका होने लगी है कि फिर एक बार धरित्री खून से लथपथ तो नहीं होगी ? आज सबको दहशत भरी निगाहें एक ऐसे महान 'शान्ति दूत' के आगमन-पथ पर टिकी हुई हैं, जो आपसी-सद्भावन को पुनः स्थापित कर सके, पर ऐसा महानायक ढूँढ़ने से भी मिल नहीं रहा है।

ऐसे गाढ़े वक्त पर हमारे महत्तम मनीषी पुत्रों, कवियों, चिन्तकों और ऋषियों की अमरवाणी हमें डूबने से उबारती है। हमारी ज्ञान-उर्वरा-भूमि के मनीषी पुत्रों ने प्रेम, अहिंसा और सद्भाव के महान संदेश निरन्तर प्रसारित किये हैं। भरत भूमि के ऐसे ही मनीषी-पुत्र थे महात्मा कबीर। कबीर का सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिक सद्भाव का, प्रेम और भक्ति का, आडम्बर और संस्कार के क्रमशः विरोध तथा पुनर्स्थापना का तथा आत्मसत्य की आकुल-व्याकुल तलाश का स्वानुभूत और तर्कपुष्ट 'साक्षी' है। इसीलिए साम्प्रदायिकता और धार्मिक असहिष्णुता के सुलगते इन क्षणों में महात्मा कबीर के साहित्य का महत्व और प्रासंगिकता अधिक बढ़ जाती है।

कबीर मध्यकालीन हिन्दी काव्य-धारा के सिर्फ क्रान्तिदर्शी कवि ही नहीं, सफल समाज सुधारक संत भी थे। सन्त कबीर के काव्य की चिन्तन-धारा और विचार-निक्षेपों की संश्लिष्टता की विशिष्टता को हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास' में रेखांकित करते हैं—'कबीर

की रचना में कितने रंग हैं--अक्खड़ समाजचेता का, कटूक्तिकार का, एकदम भावविभोर होकर आत्म-समर्पण का, गहरी रहस्य चेताना का, प्रेम के तन्मय भाव का, और चरम वैराग्य का। इन सभी रंगों में उनकी कला सक्रिय है और पूरी-पूरी संश्लिष्ट--इतना वैविध्य कम रचनाकारों में मिलेगा। जाहिर है, इसीलिए फुटकर पद और दोहे लिखकर, बिना महाकाव्य लिखें वे हिन्दी में महाकवि हैं। .....उनकी नाराजगी यकितन्मयता उनकी भाषा में एकबारगी समूची उपजी है।' इस उद्धरण से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कबीर का काव्य विलक्षण व्यक्तित्व से सम्पन्न कवि का काव्य है। कबीर के अपूर्व और विलक्षण व्यक्तित्व ने समाज में नयी क्रांति उत्पन्न कर दी। क्रांतिदर्शी कबीर की क्रांति की मौलिकता यह है कि वह अपने ही घर से शुरू होती है। कबीर की उक्ति है -

कबिरा खड़ा बाजार में
लिये लुकाठी हाथ !
जो घर जारै आपना
चलै हमारे साथ !!

कबीर ने जिस अस्तव्यस्त-त्रस्त समाज में जन्म लिया था, उस समाज को पुनर्गठित करने तथा एकसूत्रता में पिरोने का काम बड़ा कठिन था। कबीर जैसे आत्मबली और आत्मदर्शी संत के बूते की बात थी कि उन्होंने दो विरोधी समाज और दो विरोधी धर्म-सम्प्रदायों के पंक से सद्-भावना का कमल विकसित किया। संत कबीर के इस 'कुटज-चरित्र' की विशिष्टता को हिन्दी के यशस्वी समालोचक डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार किया है—'उन्होंने देश में, धर्म में, समाज में, दर्शन में, साधना में, सभी क्षेत्रों में क्रांति की जो धारा बहायी थी, उससे निश्चय ही उन क्षेत्रों के कालुष्य बह गये थे।'

अक्खड़ संत

कबीर दास जी जितने बड़े अक्खड़ संत और भगवद्लीन भक्त थे उतने ही बड़े पाखण्डियों के लिए प्रचण्ड भी थे। हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक और आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संत कबीर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का स्पष्ट रेखाचित्र इन शब्दों में खींचा है—'वे सिर से पैर तक मस्त-मौला, स्वभाव से फक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य कर्म से वन्दनीय थे।'—बाहर से 'वज्रादपि कठोर' और अन्दर से 'कुसुम कोमल' और पुष्पगंध-वासित 'नारिकेर फल सम्मित वचन' बोलने वाले संत कबीर ने अपनी पाखण्ड-रहित वाणी से तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम समाज और जनता को अनुप्राणित किया। भक्त कवियों की विनयशीलता एवं आत्मभर्त्सना के बीच उन्होंने स्पष्ट रूप से धार्मिक पाखंड तथा दोषपूर्ण सामाजिक जीवन की पक्षपात-रहित आलोचना की। बाह्याडम्बरों का निर्मम प्रहार करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने—'राम-रहीम' और 'केशव-करीम' को एक सिद्ध किया। कबीर ने दोनों ही धर्मावलम्बियों के बीच सद्भाव जगाकर, दोनों ही के हृदय को शुद्ध एवं 'प्रेममय' करने की निरन्तर कोशिश की।

कबीर ने जहाँ जाति प्रथा का एक तरह से विरोध किया, वहीं 'साई के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय' कहकर न केवल साम्प्रदायिक सद्भाव की बात की है, बल्कि इससे भी ऊपर उठकर 'जीव-सद्भाव' की बात भी की है। जब कबीर व्यापक जीव-सद्भाव की बात करते हैं और सबको ईश्वर की ही संतान बताते हैं तो हिन्दू-

मुस्लिम या सिक्ख-ईसाई की सीमाएँ स्वतः छिन्न होती हुई दीखती हैं।

संत कबीर के साहित्यानुशीलन से पता चलता है कि कबीर के चिन्तन की शैली मूलतः खंडनात्मक है। पहले तो कबीर ने स्वकालीन धर्मों एवं साम्प्रदायों में व्याप्त बाह्याडम्बरों तथा अनाचारों-दुराचरों का कठोर प्रतिवाद किया, फिर तत्तद् धर्म के सारको ग्रहण भी किया और लोगों के द्वारा उनका अनुपालन किये जाने पर बल भी दिया। भक्त प्रवर नाभादास ने १५८५ वि० में रचित अपनी कृति 'भक्तमाल' में संत कवि कबीर की पक्षपात-रहित हिन्दू एवं मुस्लिम धर्मों की आलोचना की चर्चा इन शब्दों में की है—

'हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी
सबदी साखी।
पच्छपात नहि वचन
सबहि के हित की भाखी ।।'

वस्तुतः कबीर ने दोनों धर्मों के लोगों को एक-से ही होने और एक ही ईश्वर की संतान बताने की चेष्टा में दोनों ही धर्मों की कट्टरता और भ्रामकता का खंडन किया है। प्रत्येक धर्म एवं सम्प्रदाय के पाखंड और ढकोसले पर संत कबीर का यह प्रचण्ड प्रहार समाज के ऊपर महज धौंस जमाना नहीं था, बल्कि विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के बीच एकता और सद्भाव स्थापित करने के निमित्त है। इस संदर्भ में भी डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी की उक्ति द्रष्टव्य है, उन्होंने लिखा है—"समाज सुधार की भावना या हिन्दू मुस्लिम एकता कबीर के लिए एक प्रमुख वस्तु थी, जिसे उन्होंने अपनी काव्य संवेदना में ढाला और काव्य बनकर उनके संदर्भ में वह स्पृहणीय है।' एकता और सद्भावना की स्थापना में धर्मों एवं सम्प्रदायों के जो भी अवांछित तत्व आड़े आये, कबीर ने बेझिझक उन्हें खारिज कर दिया। वे किसी भी धर्म एवं सम्प्रदाय के जोड़ने वाले तत्व के कायल थे, तोड़ने वाले तत्व के नहीं। इसलिए उन्होंने धर्मगत, सम्प्रदायगत और जीवनगत ऐसे तमाम विभेदक तत्वों का प्रतिवाद किया। जाति-जाति में, धर्म-धर्म के बीच, सम्प्रदाय सम्प्रदाय के बीच और इससे भी ऊपर मानव-मानव के बीच सद्-भावना बनाये रखने के ख्याल से ही क्रांतिदर्शी संत कबीर ने कठमुल्लों और कठपंडितों को ललकारा, मानव-मानव के बीच विभेद उत्पन्न करने वाली जाति प्रथा की कटु आलोचना की।

संत कबीर ने तुर्कों या मुसलमानों को भी कटु शब्दों में दुत्कारा—जौं तू तुरक तुरकनी जाया। भीतर खतना क्यों न कराया ।।

संत कबीर की उक्तियों में अभिव्यक्ति का लक्ष्य जातिगत विभेद ही नहीं, मूलतः धर्मनिष्ठ जाति-भेद के ऊपर प्रचण्ड प्रहार कर मानव-धर्म की पाखंड-रहित नींव डालना है। इसीलिए संत कबीर ने हिन्दुओं के बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुए कहा—'मन न रंगायो रंगायो जोगी कपड़ा।' उन्होंने कहा कि—

'पाथर पूजे हरि मिले
तो मैं पुजूं पहाड़।
याते तो चक्की भली
पीसि खाय संसार ।।'

दूसरी तरफ संत कबीर ने मुस्लिम धर्म के अन्दर फैले बाह्याडम्बर का इन्हीं शब्दों में प्रति-वाद किया—

कंकड़ पाथर जोरि करि
मस्जिद लई बनाय।
ताहि चढ़ि मुल्ला बांग दे
क्या बहरा हुआ खुदाय ।।'

'दिन में रोजा करत है रात हनत है गाय, यह तो खून वह बंदगी कैसे खुशी खुदाय' कहकर

मुसलमानों के फटकारने वाले कवि कबीर ने मन के मलीन चंदन-तिलक लगाकर समाज को ठगने वाले हिन्दुओं के पंडितों को फटकारते हुए लिखा कि—पंडिआ कवन कुमति तुम लागे। बूड़हुगे परिवार सकल सिऊं राम न जपहि अभागे।'

संत कबीर ने मुसलमानों के धर्म और पुण्य के ठेकेदार 'काजी' को भी फटकारा है 'काजी तें कवन कतेब बखानी। पढ़त-पढ़त केते दिन बीते, गति एकौ नहि जानी।' हिन्दु एवं मुसलमान के धर्मों के अन्दर निहित संकुचित एव विभेदक तत्वों पर प्रहार करने का मूल उद्देश्य अतार्किक और असहज साधना के तत्वों को दूर भगाना तथा सभी धर्मों में उदार-दृष्टि का उन्मेष करना है। जब धर्म और सम्प्रदाय में उदार मानवीय-दृष्टि का उन्मीलन होता है तो धर्म, सम्प्रदाय और उस मानव-समाज में सद्भाव अंकुरित होकर पल्लवित पुष्पित होने लगता है।

उनकी दृष्टि में धर्मो-सम्प्रदायों से विरोधी चरित्र को सर्वथा विलोपित हो जाना चाहिये। इसीलिए कबीर ने दोनों ही धर्मो के लोगों को परस्पर विरोधी चरित्र छोड़कर एक ही 'राम-रहीम' या 'विश्वम्भर-विस्मिल' को भजने की हिदायत दी है। उनकी नजर में विस्मिल और विश्वम्भर एक ही ब्रह्म के दो नाम है। हिन्दू 'विश्वम्भर' को और मुसलमान 'विस्मिल' को मन मे न भजकर ब्राह्माडम्बर में फंस कर, एक दूसरे से उलझ पड़े हैं। वे दोनों अपने मूल उद्देश्य से विमुख होते चले गये हैं। अतः संत कबीर ने दोनों को एक साथ ही आड़े हाथों लिया है—'अल्लाह राम जिऊ तेरे नाई। बंदे ऊपरि मिहिर करौ मेरे साई।।"

कबीर ने दोनों धर्मो के बाह्याचारों पर निर्मम प्रहार कर सत्यरूप और आत्मनिष्ठ 'राम-रहीम' या 'विस्मिल-विश्वम्भर' की एकता की स्थापना का प्रयास किया है। संत कबीर के समय में हिन्दू और मुस्लिम ये ही दो धर्म, सम्प्रदाय एवं विरोधी समाज थे। इन दोनों धर्मों एवं सम्प्रदायों के बीच बंद भवन के बीच सद्भाव के द्वार खोलते हुए संत कबीर ने दोनों धर्मों के आराध्य को एक ही करके प्रचारित किया है—'हमरे राम-रहीम करीमा।'

एकता और प्रेम-भ व

मुसलमान के 'एकेश्वरवाद' और हिन्दु-चिन्तन के 'अद्वैतवाद' की एकता को स्थापित करते हुए संत कवि कबीर ने सवव्यापी निर्गुण राम की महिमा और नामस्मरण का सर्वत्र आख्यान किया है। कबीर के राम का अर्थ हो जाता है अल्लाह, रहीम भी एवं विस्मिल-विश्वम्भर भी। इसीलिए कबीर के उच्चारण का राम हिन्दू-मुस्लिम सिख ईसाई—सबके 'पवित्र घर' का आराध्य एक साथ है और मूलतः एक ही है। कबीर का सारा जीवन इसी तथ्य को प्रमाणित करने में बीता। उन्होंने समस्त धर्मों एवं सम्प्रदायों के बीच सद्भाव की स्थापना करते हुए 'प्रेम' की महत्ता को स्वीकार भी किया और प्रचारित भी किया। वे लिखते हैं—'ढ़ाई आकार प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।' उनकी नजर में मानव तो दूर, ईश्वर भी प्रेम से प्राप्त होते हैं। इसलिए 'प्रेम' जीवन के लिए ही नहीं, जीवन-मुक्ति के लिए भी परम आवश्यक है। अतः जीवन में किसी भी साधना से पूर्व 'प्रेम' एवं 'सद्भाव' की साधना अत्यन्त आवश्यक है। यही वजह है कि उन्होंने सच्चे मन से प्रेम और भजन की दुहाई दी है—'करका मनका डार दे मनका मनका फेर।'

वस्तुतः जब चारों तरफ सच्चे प्रेम और भक्ति का साम्राज्य स्थापित हो जायगा तो धर्म और सम्प्रदाय की मनमानी-मनगढ़त सीमाएं तिरोहित

हो जायगी। 'एक चाम एक मलमूतर' वाला मानव, सम्प्रदायों के लिवास में तब बहुत दिनों तक कैद नहीं रह सकेगा। पूरे वातावरण में 'मानव-सद्भाव की कमल-गंध खिल उठेगी। संत कबीर ने सबको एक ही परम पिता की संतान बताकर न केवल सम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना करनी चाही, बल्कि उन्होंने समूची सृष्टि में जीव सद्भाव भी स्थापित करना चाहा था। इसी विश्वास को मन में रखकर उन्होंने यह पंक्ति कही थी—'साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय।'

इस प्रकार सम्पूर्ण कबीर-साहित्य में एक छटपटाहट है, एक बेचैनी है—भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदायों के बीच सद्भाव की स्थापना की। इसीलिए वे रह-रहकर आक्रमक भी हो उठते हैं। इन्हीं कारणों से उनकी शैली आक्रामक (प्रहारात्मक) और खंडनात्मक अधिक है। मगर, उनके इन प्रहारों और खंडनों के बीच उन तत्थों की तलाश की व्यग्रता है, जिससे धर्म धर्म से, सम्प्रदाय सम्प्रदाय से और मानव मानव से टकराहट भूल कर दोनों के प्रति निष्ठावान् बन सके। एक व्यापक सद्भाव की स्थापना हो सके। इसलिए कबीर धार्मिक एवं साम्प्रदायिक सद्भाव के महान प्रवक्ता के रूप में आदरणीय है।

प्रेरक प्रसंग

मनोबल

स्वामी विवेकानन्द काशी में घूम रहे थे। आयु अभी कच्ची ही थी। उन्हें एक सूने स्थान से होकर गुजरना पड़ा। एक ओर बड़ा-सा तालाब था और दूसरी ओर ऊँची-ऊँची दीवार। काशी में बन्दर बहुत होते हैं, सो कुछ बन्दर उनके पीछे लग गये। पहले तो वे चुप रहे, लेकिन जब बन्दरों ने अधिक तंग किया तो वे भागने लगे। उनको भयभीत जानकर तथा भागता हुआ देखकर बन्दर और भी अधिक तंग करने लगे। कभी पाँव में लिपटते, कभी काटते। इस प्रकार वे तंग आ गए। कुछ राहगीरों ने देखा तो कहा—अरे, भागो, तेज भागो, नहीं तो बन्दर तुम्हें मार डालेंगे।

अब तो विवेकानन्दजी को चिन्ता हुई। वे और भी तेजी से भागे, लेकिन बन्दर भी उसी तेजी से भागे। भागते-भागते अचानक उन्होंने सुना—ठहरो, मुकाबला करो बन्दरों का, भागोगे तो मरोगे।

इतना सुनना था कि बिजली जैसी स्फूर्ति से विवेकानन्दजी ठहर गए और तनकर खड़े हो गए। उनका इस तरह तनकर खड़े होना बन्दरों के लिए नई बात थी। अब तो विवेकानन्दजी ही उनकी तरफ झपटे और चिल्लाए—भागो! भागो यहाँ से!

बन्दरों ने उनका परिवर्तित व विकराल रूप देखा तो डर कर भाग गये।

भागने से रोकने वाले सज्जन उनके पास आए और बोले—तुम भाग क्यों रहे थे? तुम्हें मुकाबला करना चाहिए था।

—कैसे करता, मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं था। खालो हाथ भला कहीं मुकाबला होता है?

—अभी बन्दर कैसे भगाए? कैसे मुकाबला किया? खाली हाथ ही न?

विवेकानन्दजी अपनी ही बात पर झेंप गए। सज्जन मुस्कराकर बोले—हाथ खाली रहें अथवा भरे हुए; उससे कुछ नहीं होता। दिल में ताकत होनी चाहिए। ताकत न हथियार में होती है, न हाथ में; असली ताकत तो भीतर होती है।

राष्ट्रीय पुर्निर्माण में शिक्षकों का योगदान

- विमला ठकार

अनुवादक : सविता गौड़

दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत-395007

('विमलाताई' के प्रिय नाम से सुविख्यात श्री विमला ठकार श्री विनोबा भावे के सर्वोदय आन्दोलन से जुड़ी थीं, आध्यात्मिक ज्ञान, एवं तीक्ष्ण मेधा से वे सम्पन्न हो, देश-विदेश में भ्रमण कर प्रबुद्ध नागरिकों को उन्होंने संबोधित किया है।)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, राजकोट जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के जीवनदर्शन का भाव जन-जन में पहुँचाने का मौलिक प्रयत्न करता है, उसी प्रकार पूरे भारत के आश्रम करते होंगे अथवा करेंगे तो भारत का भाग्योदय हुए बिना नहीं रहेगा। "कृण्वन्तु विश्वम् आर्यम्"—यह थी स्वामीजी की भीष्म प्रतिज्ञा।

आर्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है "ऋजु" शब्द से। 'ऋजु' अर्थात् सरल। जहाँ कुटिलता प्रवेश न कर सके उसे ऋजुता कहा जाता है। ऐसी ऋजुता को जीने वाला व्यक्ति आर्य कहलायेगा। यह शब्द जातिवाचक नहीं गुणवाचक गिना जाता है।

शिक्षा का मूल हेतु ऋजुता के संस्कार देना है। ठाकुर, रामकृष्णदेव कहा करते थे कि चित्त की सरलता प्रभु कृपा का वरदान है। आज बुद्धि प्रशिक्षित होती है, परन्तु चित्त कषाय से भरा हुआ, मलिन और जटिल-कुटिल रह जाता है। चित्त-शुद्धि के संस्कार, न तो घर से मिलते हैं और न विद्यालयों से और न ही साहित्य से या संगीत, नाटक आदि कलाओं में से। The mind remains crooked.

तात्पर्य यही है कि शिक्षा पद्धति तथा प्रक्रिया में चित्तशुद्धि के साथ ही जीवनशुद्धि के संस्कारों का सिंचन प्राथमिक शालाओं से लेकर, विश्व-विद्यालयों तक होना चाहिए। इस विषय में शिक्षाविद मिलकर योजना बनायें और कार्यान्वित करें यह जरूरी है।

दूसरी बात राष्ट्रीयता की करनी है। हमारी राष्ट्रीयता का आधार भौतिकवाद या भोगवाद नहीं हो सकता। भौतिक समृद्धि चाहिए तो उसे प्राप्त भी करेंगे। परन्तु व्यक्ति का चित्त धन-परायण बने, विलास परायण बने और अमीरी या भोग विलास के लिए व्यक्ति नैतिक मूल्यों की ही नहीं बल्कि मानवता तक की आहुति देने को आतुर हो उठे—यह बात भारतीय संस्कृति क्यों कर सहन करेगी ? मनुष्य को पदार्थपरायण बनाने वाली संस्कृति भारतीय कदापि नहीं कहलायेगी। जो परमपरायण बनाये वही अपनी ऋषि संस्कृति है। अतः राष्ट्रीयता का आधार वैदिक संस्कृति है—इस बात का राष्ट्रव्यापी स्वीकार होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यही है कि शिक्षा का मूलभूत आधार, शिक्षण-संस्था का स्वरूप, शिक्षक व छात्र के सम्बन्धों का स्वरूप, अध्यापन की

पद्धति-शैली इत्यादि में जड़मूल से परिवर्तन लाना होगा। अध्यात्मनिष्ठा की नींव पर जब शिक्षा की इमारत बनेगी तभी सर्वात्म में समदृष्टि रखने की क्षमता विकसित होगी। तब ही अनेक सम्प्रदाय, भाषा और विविध जीवन शैली रखने वाले समुदायों का सहजीवन मैत्रीपूर्ण बनेगा। सहयोग परायण बनेगा। परिणामतः राष्ट्रीय एकता जन-मानस और, साथ ही जनजीवन में अनुप्राणित हो उठेगी।

हमारे यहाँ मधुर शब्द है 'आचार्य'। शिक्षक, शिक्षण आदि शब्द परवर्ती काल में उदित हुए। आचार-प्रभवो धर्मः। धर्ममूलक अर्थ और मोक्षमूलक काम को जीने का विज्ञान जो सिखाए वही है आचार्य। सिखाये से तात्पर्य मात्र ग्रंथाध्ययन कराये ही नहीं बल्कि स्वयं के आचरण से आदर्श रूप उदाहरण प्रस्तुत करे। अर्थात मेरी जीवनचर्या से धर्माचरण के संस्कार, पड़ें—इस दृष्टि से जीवन जोने वाला ही आचार्य है। जो शब्द ज्ञान जीवन जीने के कर्म में बोध रूप बनकर प्रतिबिम्बित नहीं होता वह शब्दज्ञान 'वाचारंभण मात्र' रह जाता है। आचार्य ज्ञान को जीवन में उतारने वाले नागरिक तैयार करें। "अभयं सत्वसंशुद्धिः" प्राप्त आभिजात्यपूर्ण नागरिकों को विकसित करें—इसकी अनिवार्यता है।

आज जीवन का व्यापारीकरण हो चुका है। शिक्षक भी उसके अविभाज्य अंग बन गये हैं और जिसका सरकारीकरण हो चुका है, उस शिक्षा के ढाँचे में फिट हो जाते हैं। मैं अपनी बात किससे कहूँ ? कौन सुनेगा ? "उर्ध्वबाहुः विरोम्यैष" जैसी "न कश्चित श्रृणोति माम्" वाली दशा होगी। इसीलिए शिक्षकों के बारे में, शिक्षण के बारे में बोलना-लिखना शायद ही कभी होता है।

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण नहीं पर राष्ट्र के निर्माण के लिए जूझना पड़ेगा। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में सत्याग्रह पर आधारित लोकतान्त्रिक संघर्ष करना होगा। इसके लिए अभिभावक, शिक्षक साथ ही संस्कृति प्रेमी नागरिक एवं प्रौढ़ विद्यार्थी इकट्ठे हों, शिक्षा के शुद्धिकरण का यज्ञ प्रारम्भ कर, राष्ट्रीयता के आधारों की विशद व्याख्या करें तभी आने वाली शताब्दी में अनुकूल संयोग उपस्थित हो सकेंगे। अल्पकालीन उपायों से या वर्तमान शिक्षण पद्धति में कामचलाऊ पैबन्द लगाने से कुछ हासिल नहीं होगा—ऐसा हमें लगता है।

('श्रीरामकृष्ण ज्योत' शिक्षक विशेषांक से)

भगवान् के असंख्य नाम और अनन्त रूप हैं जिनके माध्यम से उनके निकट पहुँचा जा सकता है। जिस किसी भी नाम और रूप में उनकी पूजा करोगे, उसी के माध्यम से उन्हें प्राप्त कर लोगे।

—श्रीरामकृष्ण देव

मानवीय मूल्यों के प्रतीक गुरुनानक देव

—श्री बलवीर सिंह भसीन
पटना

गीता में यह लिखा गया है कि जब-जब धर्म को हानि होती है, ईश्वर किसी-न-किसी को अवतार रूप में पृथ्वी पर धर्म की रक्षा के लिए भेजता है। उस समय जब दिल्ली की हुकूमत बड़ी कमजोर थी, आपस में एकता नहीं थी, धर्म की हालत भी ठीक नहीं थी। छोटे-छोटे राज्य और सूबे भी बहुत कमजोर पड़ गये थे। परमात्मा ने श्री गुरु नानक देव जी को संसार में भेजा।

भाई गुरदास जी के शब्दों में—

'सुनी पुकार दातार प्रभु,
गुरु नानक जग माहि पठाया।'

पाँच सौ उन्नीस वर्ष पूर्व अवतरित श्री गुरु नानक देव जी ने भटकी हुई मानवता की वैसी आवश्यकता पूर्ति भी की जिसके लिए किसी महापुरुष का जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है। उस समय की युगचेतना का रूप और माध्यम था। धार्मिक बातों में ईश्वरोपासना अधिकार की माँग मनुष्य मात्र की समता का उद्घोष और निम्न समझी जाने वाली जातियों के प्रति सहानुभूति का भाव युगबोध को व्यक्त करता था। श्री गुरु नानक देव जी की रचनाओं में उस भावाभिव्यक्ति का बड़ा मार्मिक परिचय मिलता है। उस युग में जब मुसलमान की अपेक्षा हिन्दू, स्वर्ग की अपेक्षा अछूत और योगी की अपेक्षा गृहस्थ नीच समझा जा रहा था। गुरु नानक देव जी ने संकोच रहित होकर कहा कि ईश्वर की कृपा दृष्टि वहीं पड़ती है जहाँ नीचों को संभाला जाता है।

'जिये नीच संमालीयप,
तिथै न दरि तेरी बखसीस।'

शताब्दियों में पाली हुई संकुचित वृति को उस युग में सर्व प्रथम श्री गुरु नानक देव जी ने तोड़ा। उन्होंने अपने जीवन में चार बड़ी यात्राएँ की जिसके माध्यम से उन्होंने देश-विदेश में फैले हुए विराट सामुदाय से सीधा सम्पर्क स्थापित किया।

सामाजिक क्षेत्र से, इस युग के संतों में जन-जीवन से इतना व्यापक और घनिष्ट सम्बन्ध शायद ही और किसी ने उत्पन्न किया हो। इन यात्राओं से प्राप्त दृष्टि विस्तार ने उन्हें युग की आवश्यकताओं को समझने में बहुत सहायता दी। श्री गुरु नानक देव जी ने देश के विभिन्न भागों में बिखरे हुए संतों की वाणी का संग्रह किया। इन संतों में हिन्दू भी थे, उच्च वर्ग के भी थे तथा निम्न वर्ग के भी थे। अपनी यात्राओं में श्री गुरु नानक देव जी जहाँ कहीं भी गये, वहाँ के प्रमुख संतों से वे मिले तथा अपनी विचारधारा के अनुरूप उनकी वाणी को अपने पास संग्रहित किया। आगे चलकर जब श्री गुरु अर्जुन देव जी ने आदि ग्रंथ का संपादन किया तो श्री गुरु नानक देव जी सहित विभिन्न संतों की वाणी भी उसमें सम्मिलित की गयी। इसी आदि ग्रंथको श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने गुरु पद पर प्रतिष्ठित किया।

देश की भावनात्मक एकता की दृष्टि से इस प्रयास का मूल्यांकन सहज भी किया जा

सकता है। श्री गुरु नानक देवजी ने निडरता से समाज की कुरुतियों एवं साम्राज्य में भेद पूर्ण व्यवहार तथा अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने जाति-विभेद की तीखी आलोचना की। नारी जाति के उत्थान के लिए महान प्रयत्न किये। आर्यकालीन सभ्यता में स्त्री हर तरह से सम्मानित थी और उसकी अनुपस्थिति में वहाँ कोई अनुष्ठान पूर्ण न होता था। पर धीरे-धीरे जागीरदारी और सामंतशाही युग में उसकी प्रतिष्ठा घटती गयी। उसे अवला, असहाय और तुच्छ समझा जाने लगा और उसकी हर बात में दुर्दशा होने लगी।

परन्तु इसे आश्चर्य ही कहा जायेगा कि उस घोर नारी निन्दक युग में श्री गुरु नानक देव जी ने नारी की निन्दा नहीं की अपितु उसकी महत्ता स्वीकार की है।

'सो क्यों मंदा आशीए, जित जमे राजान।'

अर्थात उसे बुरा क्यों कहा जाय जो बड़े राजाओं को जन्म देती है। श्री गुरु नानक देव जी ने जीवन के तीन ध्येय बताये—उत्तम काम करना, सबसे मिल बाँटकर खाना और ईश्वर का नाम जपना। अत्याचार के विरुद्ध झुकने की प्रवृत्ति को कायरता बताया और एकेश्वरवाद के विस्तृत सिद्धांत को पुनः स्थापना की। उन्होंने मानव जीवन को विवेक एवं मानवता के रास्ते पर चलने की प्रेरणा देने की राह बतायी। ईश्वर को निष्पक्ष, निडर, अकाल और अभंग घोषित किया। अतः उनके भक्तों को भी निडर और निर्भय होना आवश्यक बताया। उनके सुधार अधिकांश कर्तव्य सम्बन्धी और नैतिक थे।

उनके जीवन काल के विभिन्न कार्यकलापों पर दृष्टिपात करते हुए हम देखते हैं कि वह वस्तुतः मानवता के पुजारी थे। बाबर के दमन के फलस्वरूप हजारों मासूमों के कत्ल को देखकर उनकी आत्मा तड़प उठी। गुरु देव ने सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक कुरीतियों को समाप्त करने का दृढ़ संकल्प किया था। इसके पीछे भी उनका उद्देश्य मानवता की सेवा करना ही था। उन्होंने मानवतावाद का नारा लगाया। हिन्दू और मुसलमान में श्रेष्ठतर का चयन करते समय उन्होंने अपना दृष्टिकोण सफल ढंग से पेश किया एवं कट्टर मान्यताओं तथा प्रवृत्तियों पर निर्भीकता से आघात किया। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि बिना उत्तम आचरण के न ही हिन्दू श्रेष्ठ है न मुसलमान। अच्छाई और श्रेष्ठता की एक ही कसौटी है, नैतिक उच्चता।

श्री गुरु नानक देव जी का व्यक्तित्व चुम्बकीय था, उनके पास जो भी गया, उनके प्रकाश में नहा गया। हिमालय के सामीप्य की तरह शीतल हो गया। विश्व के कल्याण हेतु उन्होंने संकटों की परवाह नहीं की, उनके मन में यह एक ही तड़प थी जो कहीं स्थिर नहीं बैठने देती थी। उन्होंने अपने उपदेश किसी राजधानी, तीर्थ या तट के किनारे नहीं दिये। वे सफर पैदल ही करते थे और रास्ते में सभी तरह के लोगों से विचार-विमर्श कर उनका कल्याण करते थे। मानवता जहाँ भी थी, उन्हें प्यारी थी। वे पहाड़ों, जंगलों, अरब के रेगिस्तानों और दूर-दराज के गाँव में जाते और अपनी बात कहते।

श्री गुरु नानक देव जी एक युग पुरुष थे। उन्होंने एक नये युग का सृजन किया। एक नये समाज की नींव डाली जो अपने आदर्शों में एक अंतरराष्ट्रीय समाज था जिसके संदर्भ में न कोई नीच था न ऊँच था, न हिन्दू न मुसलमान, न रूसी, न हिन्दी, न तुर्की, न ईरानी। उनके लंगर में बिना भेद-भाव के एक ही पंगत लगती थी। श्री गुरु नानक देव जी के उपदेशों में विश्व बंधुत्व की भावना थी। उन्होंने अपनी यात्राओं में अपनी

इस प्रबल इच्छा को जो भाईचारे और एकता की प्रतीक थी, को व्यक्त किया। इसलिए उस काल में लोगों ने उनके बारे में कहा—

'नानक शाह फकीर
हिन्दुओं का गुरु मुसलमानों का पीर।'

'एक पिता एकस के हम बारक' का मानवता का पूर्ण संदेश उन्होंने दिया। श्री गुरु नानक देव ने गृहस्थ आश्रम को सबसे उत्तम बताया। साधारण मनुष्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सांसारिक जीवन में रखते हुए भी कर्तव्य पालन और नैतिकता का पालन करने का उपदेश दिया। उन्होंने संन्यास को जीवन से पलायन के साथ जोड़ा। अपने उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों से मुँह मोड़ने वाला ही संन्यास लेता है। उन्होंने सती प्रथा की भी आलोचना की। स्त्रियों को पुरुषों के समान श्रेष्ठ समझा। इस प्रकार उनके जीवन दर्शन के हर पहलू पर हम दृष्टि डालें तो वह मानवीय मूल्यों के प्रतीक के रूप में प्रकट होते हैं।

'हक पराया नानका, उस सुअर उस गाय' की चेतावनी दी और घोषित किया कि गुरु उसी जीव के कार्यों का समर्थन करता है जिसकी कमाई नेक एवं सतकर्म पर आधारित हो। उन्होंने मानव सेवा का सर्वोत्तम सिद्धांत स्थापित किया। गुरु देव के अनुसार मानव की सेवा ईश्वर की सेवा है। ईश्वर का निवास मानव हृदय में ही है न कि अन्यत्र कहीं।

उन्होंने कहा भी है—

'सचऊ उरे सब को ऊपर सच्च आचार।'

अर्थात सत्य सबसे ऊँचा है पर उससे भी उच्च सत्य आचरण है। वे विद्या उपार्जन को विद्या धन कमाने का और जमा करने का सही साधन बनाने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

'विद्या विचारो, तां परउपकारी।'

अर्थात ज्ञान को जमा कर के मत रखो उसे दूसरों में बाँटो—इससे ज्ञान और बढ़ेगा।

आज के इस हाहाकार के युग में जहाँ अशांति, व्यभिचार और अनाचार सभी सीमाओं को पार कर रहे हैं वहाँ श्री गुरु नानक देव जी के उपदेश शांति, सदाचार और सहिष्णुता की संजीवनी का काम कर सकते हैं।

(आज, पटना, से साभार)

रात्रि के समय तुम आकाश में अनेक नक्षत्र देखते हो, परन्तु सूर्योदय होने पर नहीं देखते। तो क्या इसी कारण तुम कह सकते हो कि दिन के समय आकाश में नक्षत्र नहीं होते? हे मानव, चूँकि तुम अपनी अज्ञान-अवस्था में भगवान् को देख नहीं पाते, इसी कारण यह न कहो कि भगवान् नहीं हैं।

—श्रीरामकृष्ण देव

मनुष्य चाहिए पशु नहीं

—मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०) 263653

स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८९० में हिमालय के निर्जन प्रान्त में तपस्या हेतु जाने से पूर्व कहा था, "पुनः जब मैं लौटूँगा तब मैं समाज के ऊपर एक बम की तरह फट पड़ूँगा और समाज श्वान की तरह मेरा अनुसरण करेगा।" स्वामी विवेकानन्द के रूप में यह विस्फोट लगभग १०० वर्ष पूर्व हमारी धरती पर हुआ और हमारा समाज श्वान की भाँति उनका अनुसरण करता आ रहा है। उस विस्फोट की गूँज आज भी हमारे प्राणों में सुनाई पड़ती है। उनके अनुसार जो अन्धे हैं वे देख नहीं सकते, जो विकृत बुद्धि है वे ही समझ नहीं सकते। सौ वर्ष की यह अवधि न तो अधिक है और न कम। इसी अवधि में यह महान् आध्यात्मिक शक्ति का देश भारत जाग उठा। आजादी के रूप में पहली मंजिल इसे चूमने आई। मगर आजादी के उपरान्त वह जागरण पुनः निद्रा में बदल गया। वह त्याग, वह बलिदान वह देशप्रेम न जाने कहाँ लुप्त हो गया! यह पतन तेजी से जारी है। इसलिए आज विवेकानन्द सरीखे लोग इस देश को मात्र सिद्धान्त में ही अच्छे लगने लगे हैं। व्यवहार में कोई उन्हें छूना नहीं चाहता यह एक कटु सत्य है। पर जाने-अनजाने हमारा समाज कुत्ते के समान उनके पीछे चलने को बाध्य है क्योंकि इसके सिवाय उसके पास कोई विकल्प नहीं हैं। विनाश व पतन किसी भी समाज का विकल्प नहीं हो सकता। मनुष्य ऊपर उठने के लिए प्रयत्न करता है, उसकी प्रकृति ही दैवीय हैं।

स्वामी जी ने भारत भूमि पर जो क्रान्तिकारी योजना प्रस्तुत की उस पर कार्य करना अभी भी हमने शुरू नहीं किया है। उन्होंने मद्रास के विक्टोरिया हॉल में अपनी योजना प्रस्तुत करते हुए कहा—"मेरी योजना है प्राचीन महान् आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना। भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति व समाजनीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायेगा।"

स्वामीजी के इस कथन ने हमें अपनी महान सांस्कृतिक विरासत को अपने भावी जीवन का आधार बनाने का स्पष्ट निर्देश प्राप्त होता है जो त्याग व सेवा पर आधारित है न कि भोग व स्वार्थ पर। मगर पाश्चात्य का अंधानुकरण और विकास के नाम पर अंधी दौड़ ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को भ्रष्टाचार और अनैतिकता से आच्छादित कर दिया है। सबसे बड़ा पाप व अनैतिकता स्वयं को राष्ट्र से अधिक महत्व देना और स्वयं के स्वार्थ व वासना के लिए राष्ट्र या माँ का चीरहरण है जो आज किसी से छुपा नहीं है। यह सब क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? इसकी तह में जाना होगा और देखना होगा कि ऐसी दुर्बलता हमारे भीतर क्यों समाती जा रही है। राष्ट्रीय चरित्र में यह गिरावट हमारे व्यक्तिगत चरित्र की पर्याय मानी जा सकती है क्योंकि हमने पहला कदम ही गलत उठाया है।

हमारी अवस्था :

स्वामीजी ने जिस बात की सबसे अधिक आवश्यकता इस देश के लिए बताई वह थी मनुष्य निर्माण की आवश्यकता। उन्होंने इसी व्याख्यान में सिंह गर्जना करते हुए कहा—"मनुष्य, केवल मनुष्य चाहिए। बाकी सब अपने आप हो जायेगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न, और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। आज हमें जिसकी आवश्यकता है वह है लोहे के पुट्ठो और फौलाद के स्नायु। प्रचण्ड इच्छा शक्ति। अदम्य उत्साह! सतत् कर्मशीलता। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है जिससे हम मनुष्य हो सकें", मगर खेद के साथ कहना पड़ता है कि हम केवल यही करने में असमर्थ हो रहे हैं। हम अच्छे अच्छे वैज्ञानिक, तकनीशियन, डाक्टर और प्रशासक तो पैदा कर रहे हैं मगर मनुष्य पैदा करने में हम असफल रहे हैं। हमारी शिक्षा साक्षरों की फौज देने में सफल हुई है मगर मनुष्य निर्माण में वह पूरी तरह असफल हो रही है। हम अधिक से अधिक भौतिक सम्पदा और सुखों की दौड़ में शामिल होकर सभ्य समझे जाने को शिक्षा का सबसे बड़ा प्रतिफल मान चुके हैं। हमारा समाज इसपर स्वीकृति की मुहर लगा चुका है क्योंकि वह हमारी ही सृष्टि है। मगर हम जाने हुए भी अनजान हैं कि शोषण के बिना यह संभव नहीं है और शोषण मनुष्य नहीं पशु का निर्माण करता है।

हम विवेकानन्द को छू नहीं पा रहे हैं। हम उन्हें एक महान पुरुष कहकर अपने कर्तव्यों की इति समझ रहे हैं। वे हमारी दीवारों पर लटकी तस्वीरों में ही हमें अच्छे लग रहे हैं। हमें भय है कि वे हमारे जीवन को कहीं छू न लें। यह भी एक छुआछूत का ही रोग है जो हमारी दुर्बलता की कहानी स्वयं ही कह देता है। कारण है 'सत्य' हमें आदर्श रूप में ही अच्छा लगता है व्यवहार में हम यह कलिकाल की तपस्या नहीं करना चाहते। वरन् हमारा तो यह प्रयास है कि हमारे लिये सबकुछ दूसरा कर दे। हम हाथ-पाँव तक हिलाना पसन्द नहीं करने लगे हैं। यह उस समाज की दशा है जिसके कन्धों पर स्वामीजी सर्वसाधारणकी मुक्ति का उत्तरदायित्व सौंप गये थे। जो किसी प्रकार से आज रजोगुणी होने में सफल तो हो गया है मगर इसके बाद वह अपना दायित्व दोनों ओर से भूल गया है। न तो वह स्वयं सतोगुणी होकर सांस्कृतिक बिरासत को बढ़ावा दे रहा है, न तो पद्-दलित व शोषितों के लिए अपनी शक्ति व क्षमता को न्योच्छावर कर रहा हैं।

बुद्धि के साथ हृदय का विकास :

इसका कारण भी हमें स्वामीजी की वाणी में दिखाई पड़ता है। वे आगे कहते हैं—'ऐ मेरे भावी सुधारकों, मेरे भावी देश भक्तों तुम अनुभव करो। बुद्धि या विचार शक्ति में क्या है? वह तो कुछ दूर जाती है बस वहीं रुक जाती है पर हृदय तो प्रेरणा स्रोत है? प्रेम असंभव द्वारों को भी उद्-घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब रहस्यों का द्वार है।" इस प्रकार बुद्धि के साथ-साथ हृदय का विकास। अनुभव करने की शक्ति का विकास, स्वयं के जीवन में लक्ष्य निर्धारण की समस्या का समाधान और फिर स्वयं ही पर्वत के समान विघ्न बाधाओं का सामना करने को कटि-बद्ध हो जाना—यही नवयुवकों की आवश्यकता है और इसके बाद ही मनुष्य निर्माण का कार्य आरम्भ होता है। मगर हम अपने चारों ओर इनमें से एक भी वस्तु नहीं देखते हैं। दिशाहीन स्वार्थी, संकीर्ण, अथलोलुप्त और शक्तिहीन लोगों का हजूम यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। ऐसी दशा में उस प्रेम के उदय का कोई मार्ग कैसे उन्मुक्त हो सकता है जिसके लिए स्वामीजी ने कहा था—

हमारे लिये तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की पूजा की आवश्यकता नहीं। हमारी एकमात्र पूजा की देवी है हमारी मातृभूमि। समझो बांकी सब देवी-देवता सो गये हैं। केवल एक ही जाग्रत देवता हैं और वह है हमारी महान् मातृभूमि। हमारा भारत। इसके हाथ-पाँव सर्वत्र हैं और यह हमारी नस-नस में प्रवाहित हो रहा है। हमारे लिए सेवा ही धर्म है और आत्मविश्वास ही ईश्वरविश्वास। दरिद्र, दुःखी, शोषित मानव ही हमारे लिए शिव है। प्रतिमा मात्र में शिव की पूजा मात्र प्रारम्भिक है। हमें निःस्वार्थ कर्म की धारा में बहकर स्वयं को तैयार करना है। ज्ञान, ध्यान, योग सब बाद में देखा जायेगा। पहले इस देश में जमीन तैयार करनी है। बाद में हजारों विवेकानन्द बीज बोने आ जायेंगे। अतः उठो, जागो और काम में लग जाओ। आत्मविश्वास जगाओ। बस इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

स्वयं दीपक बनो :

आजादी प्राप्त करना पर्याप्त नहीं उसे अक्षुण्य रखना उससे अधिक महत्वपूर्ण है, तभी स्वामीजी ने कहा था—आजादी मैं कल ला सकता हूँ, मगर उसे संभालेगा कौन ? तेरे देश में मनुष्य कहाँ हैं। मनुष्य चाहिए पशु नहीं। हर क्षेत्र में तीव्र बुद्धि वाले, सुदृढ़ शरीर व मनवाले तथा विशाल हृदय वाले मनुष्य चाहिए। बाँकी सब अपने आप हो जाएगा। आज समाज में पग-पग पर इसके विपरीत पशुता के दर्शन हो रहे हैं और यह अवस्था बढ़ती चली जा रही है। हरेक स्वयं को कबूतरों की तरह इस खतरे से अनभिज्ञ मानकर चल रहा है। न प्रतिकार का उपाय, न विचार की आवश्यकता। यह बड़ी सोचनीय अवस्था है जिसे बदला जाना होगा मगर अँधकार-अँधकार चिल्लाने से वह कभी दूर नहीं होता, आवश्यकता होती है एक दीपक जलाने की जो स्वयं अँधकार को दूर कर देता है।

वह दीपक कौन बनेगा ? क्या दुर्बलता, पशुता, वैराग्य व प्रमाद से घिरे हम मात्र अपना रोना रोकर ही समय नष्ट कर देंगे। तब हममें और पेड़-पौधों में अन्तर क्या है। क्या हमारा समय किसी चमत्कारी पुरुष को तलाश में ही बीतेगा जो आकाश से आकर जादू का डंडा घुमाकर हमारी दुर्दशा का निवारण कर देगा ? नहीं ये सब मात्र कपोलकल्पित बातें हैं और अब इनके लिये कहीं कोई स्थान नहीं है।

आज प्रकटित रूप से स्वामी विवेकानन्द को पकड़ने की आवश्यकता है। जन-जन में उस आदर्श की व्यवहृत करने की आवश्यकता है जिसके लिये उन्होंने अपना आत्मबलिदान दिया। यह कार्य हममें से प्रत्येक को करना है। हम चाहे जिस भी अवस्था में हैं, चाहे जो कुछ कर रहे हैं हमें वहीं से उस गिलहरी की भाँति अपना हिस्सा बंटाना है जो श्रीराम के सेतु बाँध में कुछ बालू कण देकर संतुष्ट हुई थी। निश्चय ही उसे भगवान का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। निश्चय ही प्रत्येक उसे जो आज 'मनुष्य निर्माण' के इस महान नायक के प्रति एक कण मात्र भी अपनी ऊर्जा का उपयोग करेगा वह अवश्य उनका महान् आशीर्वाद प्राप्त करेगा। वह स्वयं एक दीपक बन जायेगा जो जहाँ जायेगा वहीं रौशनी फैलायेगा, अँधकार मिटायेगा और सच्चे अर्थ में मनुष्य कहलायेगा। जय स्वामीजी।

इस्लाम में चमत्कार और मेराज

—युनूस अकेला

चमत्कार धर्म के परिप्रेक्ष्य में उस अद्भुत कार्य को कहते हैं जिसे ईश्वर किसी ईशदूत की 'नबूवत' को सिद्ध करने के लिए संसार के समक्ष प्रत्यक्ष रूप में करके दिखाये। अल्लाह ने नाबियों को उनकी नबूवत के प्रमाण के लिए चमत्कार प्रदान किये। चमत्कार दिखाने का लक्ष्य यह होता है कि चमत्कार सामने आने के बाद इनकार करने वालों के लिए इन्कार करने का कोई स्थान नहीं रह जाता। लेकिन जब लोगों ने चमत्कार देखकर भी 'नबी' को मानने से इन्कार कर दिया तो उनके उपर ईश्वरीय प्रकोप हुआ और उनको संसार से मिटा दिया गया। कुरैश भी हजरत मुहम्मद साहब (सल्लल्ला हो अलै हे वसल्लम) से चमत्कार की मांग अक्सर करते थे। उनकी मांगें बराबर टाली जा रही थी क्योंकि ईश्वर का विधान कुछ ऐसा ही है कि यदि लोगों की माँग पर कोई चमत्कार दिखा दिया जाये तो उनके लिए दो मार्ग ही रह जाते हैं—ईमान अथवा विनाश। ईश्वर की इच्छा थी कि कुरैश का अभी विनाश न हो, इसलिए उनकी मांगें टाली जा रही थीं। किन्तु जब उनको उपदेश देते और समझाते हुये लगातार दस-बारह वर्ष बीत गये और उनके सुधार की आशा नहीं रही तो हजरत मुहम्मद साहब और अन्य मोमिनों के दिल में कभी-कभी यह इच्छा उत्पन्न होती कि अच्छा होता यदि कोई स्पष्ट चमत्कार ईश्वर की ओर से स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष आ जाता और जिसे देखकर ये लोग ईमान ले आते और इस्लाम की सच्चाई से सहमत हो जाते लेकिन आपकी इस मनोकामना के उत्तर में यही आदेश आ रहा था कि धर्म न छोड़ो। जिस प्रकार हम इस्लाम का प्रसार कार्य करवा रहे हैं उसी ढंग से धैर्यपूर्वक इस कार्य को करते रहो। यदि चमत्कारों से काम लेना होता तो यह कार्य कभी का संपन्न हो चुका होता। हम चाहते तो एक-एक काफिर के दिल को मोम की तरह कोमल कर देते और उनको सत्य मार्ग पर चलने पर विवश कर देते परन्तु हमारी यह रीति नहीं है। इस ढंग से न तो मनुष्य के इरादे और अधिकारों की ही परीक्षा होती है और न ही प्राकृतिक तथा नैतिक क्रांति ही हो पाती है। जिसके आधार पर एक सुन्दर एवं सुसंगठित समाज की रचना होती है।

इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि हजरत मुहम्मद साहब को कोई चमत्कार प्रदान नहीं किया गया। आपका सबसे महान चमत्कार कुरआन' ही है। इसके अतिरिक्त कई चमत्कार उपयुक्त अवसरों पर प्रत्यक्ष रूप में सामने आये। इनमें प्रमुख हैं--चाँद के दो भाग हो जाना और मेराज (आकाश में भ्रमण के लिए जाना) इसके अतिरिक्त बहुत-सी भविष्यवाणियाँ, आपकी दुआ से वर्षा होना, रोगियों का आरोग्य होना और आवश्यकता पड़ने पर अपर्याप्त वस्तुओं का पर्याप्त होना आदि। शकुल कमर (चाँद का दो भाग होना) चाँद जैसे महान नक्षत्र का कटना अरब वालों ने अपनी आँखों से देखा। चांद के दोनों भाग पृथक होकर इतनी दूर हो गये थे कि इसका एक भाग पहाड़ी के एक ओर और दूसरा भाग दूसरी ओर दिखायी पड़ा, और फिर क्षण भर में दोनों भागों का मिल जाना। यह घटना हजरत मुहम्मद साहब के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है।

यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि ब्रह्मांड अनादिऔर अनन्त नहीं है वह नष्ट हो सकता है। जिसकी सूचना हजरत मुहम्मद साहब दे रहे थे अर्थात कयामत (प्रलय) के आने का समय निकट है। चाँद के कटने की घटना कुरआन में स्पष्ट शब्दों में प्रमाणित है और हदीस में इसका विस्तृत विवरण भी मिल जाता है। हदीस में आता है— 'हिजरत' से लगभग पाँच वर्ष पूर्व की बात है 'कमरी' महीने की १४वीं तिथि थी। रात का समय था, चाँद अभी भी उदय ही हुआ था कि एकाएक वह फटा और उसका एक भाग सामने की एक पहाड़ी के एक ओर और दूसरा दूसरी ओर दिखायी पड़ा। यह सब एक क्षण तक रहा और फिर दोनों भाग आपस में मिल गये। हजरत मुहम्मद साहब उस वक्त 'मिना' में ठहरे हुये थे। आपने लोगों से कहा, "देखो और साक्षी रहो।" कुछ लोगों ने कहा कि हजरत मुहम्मद साहब ने हम लोगों पर जादू कर दिया लेकिन कुछ लोगों ने कहा कि यदि उसने हम पर जादू किया तो हम लोग बाहर से आने वाले लोगों से पूछेंगे और जब बाहर से आने वालों से पूछा गया तो प्रमाणित हुआ कि चाँद के दो टुकड़े हुये थे।

मेराज—हजरत मुहम्मद साहब ने अपनी अंतरिक्ष यात्रा के लिए "मेराज" शब्द का प्रयोग किया था और इसका शाब्दिक अर्थ "ऊपर चढ़ने" का होता है। इसका दूसरा नाम 'असरा' भी है। 'असरा' रात की यात्रा को कहते हैं और हजरत मुहम्मद साहब ने यह यात्रा रात में की थी।

ईशदूत को धर्म-स्थापना हेतु प्रचार एवं धर्मोपदेश का जो कार्य सम्पन्न करना होता है उसके लिए जिस दृढ़ विश्वास अथवा निष्ठा की आवश्यकता होती है उसके लिए अनिवार्य है कि जिन परोक्ष तथ्यों पर विश्वास एवं निष्ठा का उपदेश वे देते हैं कम से कम उन्हें वे स्वयं अपनी आँखों से देख लें, क्योंकि उन्हें संसार में जनता के समक्ष अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उस बात को कहना है कि तुम अपने अनुमान और अभिमान के आधार पर हमारे उपदेशों को अस्वीकार कर रहे हो जबकि मैं अपनी आँखों से देखे यथार्थ तथ्यों का वर्णन कर रहा हूँ। तुम्हारे पास केवल अनुमान है लेकिन मेरे पास ज्ञान है। यही कारण है कि प्रायः ईश दूतों के समक्ष 'फरिश्ते' प्रकट हुए और उन्हें अंतरिक्ष तथा पृथ्वी के शासन का अध्ययन कराया एवं स्वर्ग तथा नर्क उनको दिखाया गया। कहने का मतलब यह है कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य को जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है वह सब कुछ उन्हे जीवन में दिखा दिया जाता है। 'मेराज अथवा असरा' इसी प्रकार की घटनाओं में से एक है जिसमें हजरत मुहम्मद साहब को वे समस्त यथार्थ तथ्य दिखाये गये थे जिस पर एक मोमिन बिना देखे 'रसूल' के कहने पर ईमान लाता है।

मेराज की तिथि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की रियायतें प्रचलित हैं किन्तु जब समस्त रिवायतों को समक्ष रखकर इतिहासकारों ने जिस बात को प्राथमिकता दी है और जिसे अधिक विश्वसनीय समझा जाता है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह घटना 'हिजरत' से एक या डेढ़ वर्ष पहले की है। इस घटना के सम्बन्ध में इमाम बुखारी और मुस्लिम के कथन का अध्ययन करने से हमें इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

हजरत मुहम्मद साहब ने एक दिन प्रातःकाल कहा, "पिछली रात ने मुझे बड़ा सम्मान प्रदान किया। मैं सो रहा था कि "जिब्राइल" ने मुझे जगाया और मुझे 'काबा' में ले गये। यहाँ लाकर उन्होंने मेरा सीना चीरा और उसे 'जम जम' के

पानी से धोया, फिर उसे 'ईमान और ज्ञान' से भरकर बन्द कर दिया। इसके बाद उन्होंने मेरे लिए एक वाहन प्रस्तुत किया जो खच्चर से कुछ छोटा और सफेद रंग का पशु था। उसका नाम 'बुर्राक था, उसकी गति बहुत तीव्र थी। मैं उस पर सवार हुआ ही था कि उसने मुझे बैतुल मुकद्दस में पहुँचा दिया। वहाँ पर 'बुर्राक' मस्जिद के द्वार पर बाँध दिया गया और मैंने 'अकसा' की मस्जिद में प्रवेश किया। दो रकात नमाज पढ़ी। तत्पश्चात् जिब्राइल ने मेरे सामने दो प्याले रखे—एक में शराब और दूसरे में दूध था। मैंने दूध का प्याला स्वीकार कर लिया और शराब का प्याला वापस कर दिया। यह देखकर जिब्राइल ने कहा, "आपने दूध का प्याला स्वीकार करके उस धर्म को ग्रहण किया है जो मनुष्य प्रकृति के अनुकूल है।

इसके बाद जिब्राइल ने आकाश यात्रा करना शुरू किया। जब हम प्रथम आकाश पर पहुँचे तो जिब्राइल ने वहाँ के द्वारपाल फरिश्ते से द्वार खोलने को कहा, "उसने पूछा, तुम्हारे साथ कौन है, जिब्राइल ने कहा, "यह मुहम्मद हैं।" द्वारपाल फरिश्ते ने फिर पूछा, "क्या इन्हें बुलाया गया है?" जिब्राइल ने कहा, "हाँ! बुलाया गया है।" द्वारपाल फरिश्ते ने द्वार खोलते हुए कहा, "ऐसे व्यक्तित्व का आगमन धन्य है।" जब हमने अन्दर प्रवेश किया तो हजरत आदम से मुलाकात हुई। जिब्राइल ने मुझसे कहा, "ये आपके पिता आदम हैं। आप इनको सलाम कीजिये।" मैंने सलाम किया। हजरत आदम ने सलाम कर उत्तर देते हुए कहा, 'स्वागतम्! हे नेक बेटे और हे नेक नबी।" इसके पश्चात हम दूसरे आकाश पर पहुँचे और पहले की ही भांति प्रश्नोत्तर के पश्चात द्वार खुला और अन्दर प्रवेश किया। वहाँ पर हजरत यहिया और हजरत ईसा से भेंट हुई। जिब्राइल ने उनसे परिचय फरमाया और कहा, "आप इन्हें सलाम कीजिये।" मेरे सलाम का उत्तर देते हुये दोनों ने कहा, 'स्वागतम! हे नेक भाई और नेक नबी।" फिर हम तीसरे आसमान पर पहुँचे। यहाँ हजरत युसूफ से भेंट हुई और यथापूर्वक सलाम हुये और उत्तर मिला। चौथे आकाश पर हजरत इदरीस से भेंट हुई। पाँचवें आकाश पर हजरत हारुन और छठे आकाश पर हजरत मूसा से मुलाकात हुई। सातवें आकाश पर हजरत इब्राहीम से भेंट हुई और उन्होंने भी सलाम का जवाब देते हुए कहा, "स्वागतम्! हे नेक बेटे और नेक नबी।" इसके पश्चात 'सिदरे तुलमन्द हा' (जिससे आगे कोई नहीं जा सकता) तक पहुँचाया गया। यहाँ पर मैंने देखा कि एक 'बेर, के वृक्ष पर अगणित फरिश्ते जुगनू की तरह चमक रहे थे।

यहाँ पर हजरत मुहम्मद ने यथार्थ तथ्यों का अध्ययन किया और अल्लाह तआला से वार्तालाप हुआ। अल्लाह तआला ने इस्लाम के अनुयायियों के लिए रात और दिन में 'पचास बार नमाज' अनिवार्य की। जब हजरत मुहम्मद साहब इन निरीक्षणों से निवृत्त होकर वापस आ रहे थे तो पुनः हजरत मूसा से भेंट हुई। उन्होंने पूछा, "अल्लाह तआला से क्या उपहार लाये?" आपने कहा, "दिन और रात में पचास नमाजें।" हजरत मूसा ने कहा, "आपके अनुयायी इस भार को उठा न सकेंगे। अतः खुदा के पास वापस जायें और इन्हें कम करायें।" अतः हजरत मुहम्मद साहब वापस चले गये और नमाजों को कम करने का अल्लाह तआला से निवेदन किया। वहाँ से एक भाग कम कर दिया गया परन्तु हजरत मूसा ने हरजत मुहम्मद साहब को बार-बार अल्लाह तआला के पास भेजा और बार-बार नमाजों की कमी करायी गयी। अन्त में नमाजों की मात्रा घटते-घटते पाँच रह गयी, यद्यपि हजरत मूसा

इससे भी सहमत नहीं थे, वे अभी और कम कराना चाहते थे किन्तु हजरत मुहम्मद साहब ने कहा, "मुझे और अधिक कहते हुये शर्म आती है।" इस पर ईश्वर की ओर से भविष्यवाणी हुई "यद्यपि हमने नमाजों की संख्या घटाकर पाँच कर दी है, फिर भी तुम्हारे अनुयायियों में जो लोग नियम से प्रतिदिन पाँच बार की नमाज अदा करेंगे, उन्हें हम पचास नमाजों का ही पुण्य देंगे।"

यही इतना नहीं, इसी अवसर पर अल्लाह तआला ने दो उपहार और भी प्रदान किये थे, एक तो 'सूरे बकर' की आखिरी आयतें जिन पर इस्लाम के नियमों पर ईमान पर दृढ़ रहने का वर्णन किया गया है और उसी में यह भी सूचना दी गयी है कि हजरत मुहम्मद साहब के अनुयायियों में जो शिर्क (निषेध) से बचा रहेगा, उसे मोक्ष प्राप्त होगा। दूसरा एक मास का उपवास (रमजान माह में)।

हजरत मुहम्मद साहब ने इस यात्रा में स्वर्ग और नर्क को अपनी आँखों से देखा। जब वे अंतरिक्ष यात्रा से 'बैतु मुकद्दस' में वापस हुए तो उन्होंने देखा कि अल्लाह के नबी एकत्रित हैं। आपने नमाज पढ़ाई और सबने आपके पीछे नमाज पढ़ी। इसके पश्चात् हजरत मुहम्मद साहब अपने स्थान पर वापस आये और प्रातःकाल अपने उसी स्थान से जागे जहाँ आप सोये हुये थे।

प्रश्न युवाओं के : उत्तर स्वामी निखिलेश्वरानन्द के (१)

[ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो युवाओं के मन को मथते रहते हैं। ऐसी अनेक समस्याएँ हैं जो आधुनिक सन्दर्भ में युवजनों को उद्विग्न करती रहती हैं। वे इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ते हैं। ऐसी ही समस्याओं और प्रश्नों को लेकर कुछ युवजन एकत्र हुए थे रामकृष्ण कुटीर, अल्मोड़ा द्वारा आयोजित युवा सम्मेलन में, गत १४ और १५ मई १९९७ को। रामकृष्ण मिशन आश्रम राजकोट में कार्यरत एवं वहीं से प्रकाशित गुजराती मासिक पत्रिका 'रामकृष्ण ज्योत' के सम्पादक स्वामी निखिलेश्वरानन्द स्वयं एक प्रबुद्ध, सुसठित तरुण संन्यासी हैं। इन्होंने युवजनों के प्रश्नों के जो उत्तर दिये थे उन्हें हम अन्य युवाओं के हितार्थ यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। —सं०]

प्रश्न—मैं गम्भीर कैसे हो सकती हूँ? **[सुश्री मल्लिका साहा, ऐडम्स गर्ल्स इंटर कॉलेज की छात्रा]**

उत्तर—तुम गम्भीर होना आखिर चाहती क्यों हो? हमेशा प्रसन्न और प्रफुल्लित रहो। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "सर्वदा प्रसन्न और मुस्कुराते रहने से तुम इस संसार में किसी वस्तु या किसी प्रार्थना की अपेक्षा ईश्वर के निकट आसानी से पहुँच सकते हो।" स्वामी विवेकानन्द स्वयं खूब हँसी-मजाक किया करते थे, दिल्लगी किया करते थे और अपने भाषणों के बाद ठठाकर हँसा करते थे। अमेरिका आदि पश्चिमी देशों के लोग यह देखकर अचम्भित थे। जब वे अमेरिका में प्रवास कर रहे थे, तो एक दिन एक महिला ने उनसे पूछा, "स्वामीजी, आपको गम्भीर रहना

चाहिए, आखिर आप धर्मोपदेशक हैं!" स्वामीजी ने परिहास पूर्वक कहा, "हाँ महोदया, जब मेरे पेट में दर्द होता है तब मैं भी गम्भीर हो जाता हूँ।" बाद में स्वामीजी ने बताया कि धर्म का मतलब मुँह लटकाये रहना या उदास रहना नहीं है। वेदान्त के अनुसार हम अमर आनन्द की सन्तान हैं, अमृत-पुत्र हैं, अतः हम उदास और विषण्ण क्यों हों? हाँ, निश्चय ही इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपने अध्ययन तथा अपने कार्यों में निष्ठावान और ईमानदार न हों।

प्रश्न—मन की शान्ति के क्या उपाय हैं? [सुश्री विनीता श्रीवास्तव, कुमाऊँ विश्वविद्यालय की बी० एड० की छात्रा]

उत्तर—मन की शान्ति के लिए श्री श्री माँ सारदा देवी के द्वारा एक स्वर्णिम सूत्र, सुनहला नियम हमें प्रदान किया गया है—"यदि शान्ति चाहती हो, बेटी, तो किसी का दोष मत देखना। दोष केवल अपना ही देखना। संसार को अपनाना सीखो। कोई पराया नहीं, बेटी, संसार तुम्हारा है।" आत्मनिरीक्षण करने से हम देखेंगे कि ज्यादातर दूसरों की निन्दा करने, दूसरों पर दोषारोपण करने या अनावश्यक रूप से दूसरों के मामले में टाँग अड़ाने से हम अपनी मानसिक शान्ति खो बैठते हैं। जीवन में अपनी समस्त पीड़ाओं, सारे दुःखभोगों के लिए हमें अपने आप पर दोषारोपण करना चाहिए। हमें स्वयं अपने को शुद्ध करना चाहिए, दूसरों की चिन्ता किये बिना थोड़ी देर के लिए हम स्वयं अपने को पूर्ण एवं परिशुद्ध बनाने की चेष्टा करें और हमें शान्ति मिलेगी।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरों के कष्टों का हम अनुभव नहीं करें। हमें दूसरों के लिए महसूस करना चाहिए और दीन-दुःखी, रोगी, अपढ़, पददलित लोगों की सेवा करने की चेष्टा करनी चाहिए। वस्तुतः मानसिक शान्ति प्राप्त करने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका है।

अमेरिका और यूरोप में उपदेश प्रदान करने के उपरान्त जब स्वामी विवेकानन्द भारत वापस आये तब एक युवक ने कलकत्ते में उनसे भेंट की और कहा कि यद्यपि उसने अनेक तरीके अपनाये तथापि उसे मानसिक शान्ति नहीं मिल रही है। स्वामीजी द्वारा यह पूछे जाने पर कि उसने कौन-सा तरीका अपना रखा है उस युवक ने बताया कि किसी ने ध्यान के समय अपने मन को सूना या रिक्त रखने की चेष्टा करने की सलाह उसे दी थी, तदनुसार अपने कमरे के दरवाजों को बन्द कर तथा जब तक संभव हो अपनी आँखें मूँदकर वह ध्यान में बैठा करता था, किन्तु उसके मन को शान्ति नहीं मिली। स्वामी जी ने सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में उससे कहा, "मेरे बच्चे, यदि तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास हो तो सुनो, यदि शान्ति चाहते हो तो इसके ठीक विपरीत करना होगा। द्वार को खुला रखना होगा और आँखें खोलकर चारों ओर देखना होगा। तुम्हारे आसपास के जो लोग सहायता की आशा में पड़े हैं, उनकी सहायता करो—भूखों को अन्न दो, प्यासों को जल दो, यथासाध्य दूसरों की सेवा करो—इसी से तुम्हारे मन को शान्ति मिलेगी।" स्वामी जी के कथन का तात्पर्य यह है कि दूसरों की सेवा के द्वारा चित्त शुद्ध किये बिना ध्यान में अग्रसर होना आसान नहीं है।

मन की शान्ति का एक अन्य महत्वपूर्ण उपाय है ध्यान। सामूहिक क्षेत्र में प्रभावशाली प्रबंधन के निमित्त अनेक कम्पनियों ने कार्यपालक पदाधिकारियों के लिए नियमित ध्यान सभों का आयोजन शुरू किया है। भारत और विदेशों में कई शैक्षणिक संस्थाएँ अब अपने कार्यक्रमों में ध्यान को सन्निविष्ट कर रही हैं। हर्बर्ट बेनसन,

डॉ० दीपक चोपड़ा तथा कई अन्य व्यक्तियों ने वैज्ञानिक शोधों के आधार पर "द रिलैक्सेशन रिसपॉन्स", "द क्वंन्टम हीलिंग", "द एजलेस बॉडी एण्ड द टाइमलेस माइण्ड" आदि जैसी लोकप्रिय पुस्तकों के द्वारा मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ध्यान करने की हिमायत की है।

प्रश्न—हमें ध्यान कैसे करना चाहिए? **[कुमारी विमला दवंगी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा की बी० टी० सी० की छात्रा]**

उत्तर—ध्यान को कई प्रणालियाँ हैं। जैसे—विपश्यना, पश्यना, जेन ध्यान, अनुभवातीत ध्यान, वेदान्ती ध्यान आदि। तुम अपनी पसन्द के अनुरूप कोई पद्धति अपना सकती हो। लेकिन यह बात महत्वपूर्ण है कि तुम्हें किसी सुयोग्य गुरु से स्वयं ध्यान की पद्धति सीखनी चाहिए। तुम लोगों में से जिन लोगों को ऐसे गुरु नहीं मिल पाये हैं, उन्हें मैं ध्यान का सरल तरीका सुझा सकता हूँ। पहले ध्यान का स्थान चुन लो, चाहे वह स्थान मन्दिर हो या तुम्हारे घर का एक स्वच्छ कोना। किसी भी सुखद आसन में बैठ जाओ, केवल इतना ध्यान रहे कि मेरुदण्ड सीधा तना हो। आँखें बन्द कर लो और पहले विश्व के मंगल के लिए प्रार्थना करो। फिर बुद्ध, ईसा मसीह या श्रीरामकृष्ण जैसे किसी पूत-पवित्र सत्पुरुष का, जो तुम्हें प्रिय लगें, अपने हृदय के केन्द्र स्थल में मानस-दर्शन करने की चेष्टा करो। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अपनी आँखें मूँदने के पहले थोड़ी देर तक ऐसे पवित्र व्यक्ति की छवि (फोटो) को अपनी खुली आँखों से देख सकते हो। इस प्रकार नियमित रूप से दिन में दो बार बेहतर हो उषा काल और संध्या काल में—१० से १५ मिनटों तक अभ्यास करो। तुम्हें मानसिक शान्ति मिलेगी और चित्त को एकाग्र करने की तुम्हारी शक्ति भी बढ़ेगी।

प्रश्न—ध्यान करना क्या स्वार्थ परायणता नहीं है? इससे संसार की क्या भलाई होती है?

[कुमारी यशोधरा जोशी, गवर्नमेन्ट गर्ल्स इन्टर कॉलेज, अल्मोड़ा की छात्रा]

उत्तर—अरे, तुम तो श्रीरामकृष्ण की भाँति बातें कर रही हो! जब स्वामी विवेकानन्द ने शुकदेव की भाँति दिन-रात गहन ध्यान में डूबे रहने की इच्छा प्रकट की, तब श्रीरामकृष्ण ने लाखों तापित लोगों के दुखों को भूलकर अपनी स्वयं की मुक्ति और ध्यान के आनन्द की खोज के लिए उन्हें फटकारा। उन्होंने उन्हें (स्वामीजी को) पूजा के भाव से दुखी प्राणियों की सेवा करने तथा प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर के प्रकाश के रूप में देखने की सलाह दी। श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी को स्मरण दिलाया कि समाधि से भी एक ऊँची अवस्था होती है। उस अवस्था में मनुष्य सम्पूर्ण विश्व को दैवी प्रकाश के रूप में देखता है जैसा कि सूफी कवि जफर के गीत में सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

'तुम से हमने दिल को लगाया,
जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझको अपना पाया,
जो कुछ है सो तू ही है॥'

लेकिन अपना कर्म पूजा भाव से करना आसान नहीं है। इसी से कर्म के साथ-साथ थोड़ा ध्यान, कम-से-कम दिन में दो बार करना ही चाहिए। अनेक लोग अन्य लोगो की भलाई करने लगते हैं, किन्तु इसमें 'वास्तविक भलाई' की अपेक्षा 'लगे रहने' का भाव ही अधिक रहता है। जो लोग ध्यान करते हैं वे उनलोगों की अपेक्षा समाज की अधिक भलाई करते हैं जो अपने अहं को संतुष्ट करने, अपना विज्ञापन करने की वास्तविक इच्छा को छिपाते हुए अपने लोकोपकारी कार्यों द्वारा दूसरों की भलाई करने का दावा करते हैं। जो

अच्छी तरह ध्यान करते हैं, वे सशक्त आध्यात्मिक स्पन्दनों की सृष्टि करते हैं जो अनेक लोगों के जीवन को रूपान्तरित करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की उपस्थिति मात्र हमारे मन के लिए वरदान सिद्ध होती है।

इसीलिए हमें उन सद्पुरुषों की निन्दा नहीं करनी चाहिए जो एकान्तिक रूप से ध्यान करते हैं और ना ही उन लोगों की निन्दा करनी चाहिए जो दूसरों की निस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं। तथापि हम में से अधिकांश लोगों के लिए अपने दैनिक कार्यों में कर्म और ध्यान का सुन्दर समन्वय करना यही सराहनीय है।

प्रश्न—जब मन में परम अवसाद आ जाए, तब हम क्या करें ?

[कु० लता मिश्र, एडम्स गर्ल्स इन्टर कॉलेज, अल्मोड़ा की छात्रा]

उत्तर—ऐसी मानसिक अवस्था में तुम्हें तुरंत किसी ऐसे व्यक्ति के निकट जाना चाहिए जिसके लिए तुम्हें परम आदर और प्रेम हो तथा उन्हें अपने अन्तर्मन की भावनाओं और समस्याओं को कह कर अपने को हल्का कर लेना चाहिए। हम लोगों ने कई मामलों में देखा है कि मात्र मन को हल्का कर लेने से आधी समस्या का समाधान हो जाता है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति तत्काल उपलब्ध नहीं हो तो सभी जीवों में निवास करने वाले प्रभु की तुम गहन प्रार्थना कर सकती हो। अपने मन को सकारात्मक विचारों से भर लो। कभी-कभी किसी प्रेरक ग्रन्थों का अध्ययन भी जादू के समान काम कर जाता है। तुम्हें निःसन्देह करने के लिए मैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत करूँगा।

एक युवक मन-ही-मन बहुत खिन्न और उदास था। भारत-पाकिस्तान युद्ध में उसके सभी साथी मारे जा चुके थे और जिस जीप को वह चला रहा था उस पर पाकिस्तानी वायुयान ने बम गिरा दिया था। रात में दिल्ली रेलवे स्टेशन पर वह चलती गाड़ी में कूद कर आत्महत्या कर लेने की बात सोच रहा था क्योंकि अब उसके लिए जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया था। किसी प्रकार उस रात वह नहीं मरा। दूसरे दिन सुबह-सुबह जब वह अखबार लाने गया, अचानक स्वामी विवेकानन्द की किसी पुस्तक पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस पुस्तक की कतिपय पंक्तियों को ही पढ़ने पर उसे नया जीवन मिल गया। उसने जीवन का अर्थ, जीवन का प्रयोजन दूसरों को प्रेम करना, दूसरों की सेवा करना—पा लिया। उसने सेना की सेवा से अवकाश ग्रहण कर लिया। वह महाराष्ट्र में स्थित रालेगण सिद्धि नामक अपने गाँव में वापस आ गया तथा अनेक विपरीत परिस्थितियों में अनेक सेवा मूलक कार्यक्रम शुरू कर दिये। धीरे-धीरे वह गाँव पूरी तरह बदल गया। उसकी आश्चर्यजनक उपलब्धियों से प्रभावित होकर, उसे अब महाराष्ट्र के ३०० गाँवों को विकसित करने का दायित्व प्रदान कर दिया गया है। (उस व्यक्ति का नाम है—अन्ना हजारे)।

एन० सी० सी० का एक मेजर घोर मानसिक उदासी की अवस्था में था, यहाँ तक कि वह बार-बार कहता था—"मैं अपने आपको गोली मार दूँगा।" संभवतः उसका वैवाहिक जीवन दुखी था। उसके वरिष्ठ पदाधिकारी—एन० सी० सी० के एक कर्नल ने तिरुअनन्तपुरम् (केरल) के रामकृष्ण मिशन के एक साधु से यह बात बतायी। उन्होंने उस अफसर को अपने अधीनस्थ अफसर को 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' की एक प्रति भेंट में देने की सलाह दी और उससे यह संवाद कह देने को कहा कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद उसको जैसी इच्छा हो वैसा करे। कुछ महीनों के बाद उसके कर्नल ने रामकृष्ण मिशन के उक्त साधु को

कहा कि 'वचनामृत' ने उसके अधीनस्थ अधिकारी का जीवन बचा लिया। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद उसके अधीनस्थ पदाधिकारी ने उससे कहा था, 'भगवान के लिए मैं आत्महत्या जैसा महा पाप नहीं करने जा रहा हूँ!'

इस तरह अनेक लोगों ने सकारात्मक चिन्तन के द्वारा—प्रेरक पुस्तकों के अध्ययन के द्वारा—अपनी खिन्न मानसिक अवस्था और अबसाद पर विजय प्राप्त कर ली है।

(क्रमशः)

□

युवा मंच

स्वतंत्रता के पचास वर्ष और जनजीवन

कु० ऋचा रश्मि

राजेन्द्र महाविद्यालय, छपरा

आज समस्त भारत वर्ष में भारतीय स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती मनाई जा रही है। स्वतन्त्र भारत को दो खुशियाँ आज एक साथ मिली हैं, पहला तो यह कि इसने स्वतन्त्रा के पचास वर्ष पूरे किए और दूसरा इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने वाला है। दोनों हीं अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत की स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए जिस तरह भारत में एक लहर चली थी वह आज स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। जिन महान आत्माओं ने अपनी आहूति दी तथा अपने त्याग और तपस्या से भारत की स्वतंत्रता को प्राप्त किया, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हम आज खुली हवा में साँस ले रहे हैं। आज से ठीक पचास वर्ष पूर्व पंद्रह अगस्त १९४७ को अंग्रेजी राज्य द्वारा भारत को स्वतन्त्र घोषित किया गया। सम्पूर्ण जनमानस में आनन्द की लहर दौड़ चली थी। देशवासियों के कोटि-कोटि सपने साकार होने को मचल उठे थे।

काल के क्रूर पंजों ने जिन शहीदों को असमय ही ग्रसा था उनकी आत्मा को भी निश्चय ही शांति मिली होगी, क्योंकि वे सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही रूपों में रहते हुए भारत की स्वतन्त्रता चाहते थे। मरने के समय भी उनकी सिर्फ यही इच्छा होती थी कि यदि भारत को सचमुच आजाद कराना है तो क्यों न उन्हें बार-बार इसी भारत भूमि पर जन्म लेना पड़े, पर भारत की स्वतंत्रता यही उनका लक्ष्य था।

भारतीय स्वातंत्र्य मोहभंग की स्थिति लिए आया। सबसे पहला झटका हमें देश के विभाजन से लगा। देश का अभिन्न हिस्सा पाकिस्तान हमसे अलग हो गया। उस समय बोया गया—दुश्मनी का बीज आज महान् विषवृक्ष बनकर विश्व के समक्ष खड़ा है। फिर शासन की बागडोर हमारे नेताओं के हाथ में थी। हम बड़े खुश थे। देश के विकास के लिए तरह-तरह की योजनाएँ बनीं, करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाये गये। पर

विकास का वह रथचक्र नेताओं की स्वार्थ लिप्सा के बीचसे क्या उबर सका ? तब गाँवों से दीन-हीन जनों के उत्थान को मद्देनजर रखकर, हमारे नेताओं का जो काफिला दिल्ली से चला था क्या उन तक पहुँच पाया ? यह एक विचारणीय तथ्य है।

भ्रष्ट नौकर शाही के कारण यह प्रयत्न करीब-करीब अक्षम हीं सिद्ध हुआ। सारा अधिकार और शासन अपने हाथों में आ जाने के बाद भी व्यवस्था वही रही। स्वाधीन भारत पूँजीवादी तथा सामन्ती दृष्टिकोण रखने वालों से फिर से शोषित होने लगा। समय-समय पर उभरते हुए चुनावों के स्वर ने जातिवाद, पार्टी पॉलिटिक्स और सम्प्रदायिकता आदि को और भी प्रोत्साहन दिया। हम भारतीय जो पहले एक थे आज टुकड़ों में बँट रहे हैं। खाईयाँ पाटने के बजाय वृहत् से वृहत्तर होती जा रहीं हैं।

जरूर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक विकास को वरियता मिली। जिसका प्रमाण है कि भारत आज विश्व के दस उन्नतिशील औद्योगिक देशों में से एक है। नए-नए कल कारखाने स्थापित हुए हैं। हर क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन आया है चाहे वह कृषि क्षेत्र, अंतरिक्ष विज्ञान, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, कम्प्यूटर या बायोटेक्नोलॉजी का क्षेत्र है। यही कारण है कि आज हमारे देश में बढ़ते कम्प्यूटर उत्पादों से अमेरिका को बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हुआ है। पर इन उपलब्धियों के बावजूद भी हमारे बीच एक रिक्तता आयी है एक पतन की अवस्था जारी है जो हमारे स्वयं और इस देश की प्रगति में सबसे बड़ा बाधक सिद्ध हो रही है। वह है हमारी नैतिकता, हमारे अस्तित्व बोध का लुप्त होना। आज हम विदेशों की ओर भाग रहे हैं। हमने यह लक्ष्य तय किया है कि तरक्की करने का एक मात्र साधन है अत्याधुनिक बनना और भौतिकता के साँचे में ढलना।

स्वतन्त्रता पूर्ण गाँधी जी ने नारा दिया था "अंग्रेजों भारत छोड़ो" आज हम उसी को ऊपर से दुहराते हैं पर भीतर से कहते हैं नैतिकता भारत छोड़ो, लोकतंत्र भारत छोड़ो, राष्ट्रीयता भारत छोड़ो·····कितनी कड़वी है सुनने में अजीब सा लगता है पर है यही यथार्थ, इसे स्वीकारना ही होगा। वर्तमान स्थिति भारी उथल-पुथल की है। प्रायः हर क्षेत्र में एक अतिनाद सुनाई पड़ता है।

तब हमें लौटना पड़ता है अपने मनीषियों और विचारकों की ओर जिनके विचारों को हमने न जाने अपने मस्तिष्क के किस तहखाने में बंद कर रखा है।

इन महापुरुषों ने अपने दिव्य चक्षुओं द्वारा भारत का भविष्य देखा था। नए भारत को गढ़ने की प्रेरणा दी थी। जिनमें विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द का नाम अग्रणी है। स्वामी जी ने सर्वप्रथम इस बात पर जोर दिया कि पहले मनुष्य निर्माण हो यानी उसमें नैतिकता, पवित्रता, चारित्रिक बल और सबसे बढ़कर समस्त विश्व को अपना अभिन्न समझने जैसे गुण हों।

स्वामी जी ने हम भारतीयों को आह्वान करते हुए कहा था "तुम्हें देश की प्रगति के लिए अद्भूत कार्य करने हैं।" आज की अवस्था थोड़ी बदल अवश्य गयी है, इसलिए कार्य प्रणाली में भी अंतर करना होगा। हमें अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करना होगा। भारत का पुनरूत्थान होगा पर वह शारीरिक शक्ति से नहीं वरन् आत्मा की शक्ति से। भारत के पतन का अर्थ है आध्यात्मिकता का समूल नाश। भारत के राष्ट्रीय आदर्श है त्याग और सेवा। तुम्हें इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न करना है।"

वे कहते हैं "तुम्हें सर्व प्रथम आत्म विश्वास

जगाना होगा, कुछ आचरणों को अपने जीवन में उतारना होगा। हो सकता है प्रारंभ के तुम्हें कुछ कठिनाई भी हो पर डरो मत बढ़ते चलो।" विध्वंसकारी कर्मों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है। इससे ऊर्जा क्षय हीं होगी। ईश्वर पर विश्वास रखो। हर बड़े कार्य को तीन अवस्थाओं से गुजरना होता है उपहास, विरोध और स्वीकृति इसलिए विरोध और अत्याचार को सहते हुए हमें अपने मार्ग पर डटे रहना है जब तक को हमारा प्राण्य न प्राप्त हो।" स्वामी जी कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य एवं प्रत्येक राष्ट्र को बड़ा बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक है—

—सौजन्य शक्ति में दृढ़ विश्वास
—ईर्ष्या और सन्देह का अभाव
—जो सन्मार्ग पर चलने में और सत्कर्म करने में संलग्न हो उनकी सहायता करना।

मनुष्य जाति के नाम शायद ही इतना सारगर्भित विचार किसी ने दिया हो। "सर्वप्रथम संगठित हो जाओ और विचार करो क्योंकि मनुष्य की गरिमा उसकी विचारशीलता के कारण है।

विश्वास-विश्वास अपने ऊपर विश्वास, परमात्मा के ऊपर विश्वास, यही उन्नति का एक मात्र साधन है। उठो जागो—स्वयं जगकर औरों को जगाओ—अपने नर जन्म को सफल करो" स्वामी जी के इस महामंत्र को अपनाने का सही समय अब आ गया है। हमें देर नही करनी चाहिये।

श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज कहते हैं कि भारत के दो रूप हैं—एक है अमर भारत और दूसरा है रोगी भारत। आज का भारत तो रोगी भारत है जिसके त्याग और तितिक्षा जैसे सद्गुणों का क्षय हो रहा है। वे कहते हैं कि अमर भारत, महत्तम विचारों का, भावों का देश है जिसे आज भी एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

विशाल महान भारत का भाव मन में लाओ। सर्वप्रथम एक शिष्ट नागरिक बनो, ऐसा सोचना हम प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है कि मैं भारत का नागरिक हूँ। मेरे कंधों पर समस्त भारत की समस्याएँ हैं। मैं भली-भाँति अपने दायित्वों का निर्वाह करने की कोशिश करूँगा। ऐसा दृढ़ विश्वास जब हर आदमी में पनपेगा तो एक क्रांतिकारी परिवर्तन देश में होगा और हममें देश प्रेम जगेगा। देश की प्रगति होगी और आत्म उन्नति भी होगी।

निगुण और सगुण—ब्रह्म और शक्ति—इन दोनों में कोई भेद नहीं हैं। भगवान् जब निष्क्रिय अवस्था में होते हैं अर्थात् जब वे सृष्टि, स्थिति एवं संहार के कार्य में रत नहीं रहते तब हम उन्हें ब्रह्म कहते हैं। किन्तु जब वे इन कार्यकलापों में लगे रहते हैं तब हम उन्हें काली अथवा शक्ति कहते हैं।

—श्रीरामकृष्णदेव

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

'एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक
स्वामी सुवीरानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के शिष्य
स्वामी सारदानन्दजी द्वारा लिखित
भगवान श्रीरामकृष्णदेव की बृहत् जीवनी

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

तीन खण्डों में मूल्य रु. १०५/-

भगवान श्रीरामकृष्णदेव का
अपने शिष्यगण, भक्त तथा
दर्शनार्थियों के साथ वार्तालाप

श्रीरामकृष्णवचनामृत

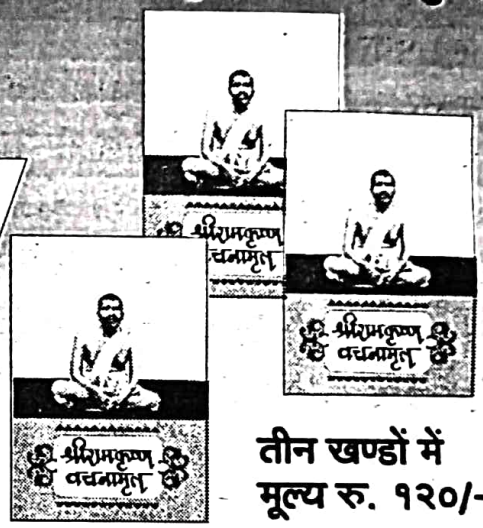

तीन खण्डों में
मूल्य रु. १२०/-

स्वामी गंभीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की
संपूर्ण विस्तृत जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में मूल्य रु. १४०/-

स्वामी विवेकानन्द कृत योगविषयक पुस्तकें

ज्ञानयोग
मूल्य रु.२५.००

राजयोग
मूल्य रु.२०.००

कर्मयोग
मूल्य रु.१३.००

भक्तियोग
मूल्य रु.१२.००

प्रेमयोग
मूल्य रु.१५.००

अधिक जानकारी के लिए लिखें : रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।